जैनधर्म की कहानियाँ

(श्री हरिवंश पुराण ''संक्षिप्त'' श्री नेमिनाथ चरित्र)

भाग- 31

1008 श्री तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान का विवाह से विरक्त होना और दीक्षा के लिए गिरनार पर्वत की तरफ रथ मोड़ लेना।
इसी गिरनार पर्वत पर यथासमय इंद्रों ने आकर दीक्षा, ज्ञान एवं निर्वाण कल्याण महोत्सव मनाये।

प्रकाशक

अखिल भा. जैन युवा फैडरेशन–खैरागढ़

श्री कहान स्मृति प्रकाशन–सोनगढ़

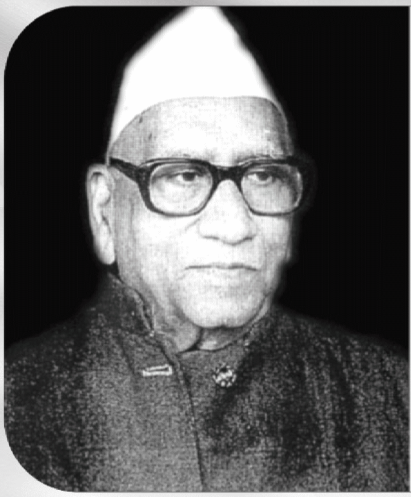

श्री खेमराज गिड़िया
जन्म : 27 दिसम्बर, 1918
देहविलय : 4 अप्रेल, 2003

श्रीमती धुड़ीबाई गिड़िया
जन्म : 1922
देहविलय : 24 नवम्बर, 2012

आप दोनों के विशेष सहयोग से सन् १९८८ में **श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया** ग्रन्थमाला की स्थापना हुई, जिसके अन्तर्गत प्रतिवर्ष धार्मिक साहित्य एवं पौराणिक कथाएँ प्रकाशित करने की योजना का शुभारम्भ हुआ। इस ग्रन्थमाला के संस्थापक श्री खेमराज गिड़िया का संक्षिप्त परिचय देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं –

जन्म : सन् १९१८ चांदरख (जोधपुर)
पिता : श्री हंसराज, **माता :** श्रीमती मेहंदीबाई

शिक्षा/व्यवसाय : प्रायमरी शिक्षा प्राप्त कर मात्र १२ वर्ष की उम्र में ही व्यवसाय में लग गए।
सत्-समागम : सन् १९५० मेंपूज्य श्रीकानजीस्वामी का परिचय सोनगढ़ में हुआ।

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा : सन् १९५३ में मात्र ३४ वर्ष की आयु में पूज्य स्वामीजी से सोनगढ़ में अल्पकालीन ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा लेकर धर्मसाधन में लग गये।

विशेष : भावनगर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में भगवान के माता-पिता बने।

सन् १९५९ में खैरागढ़ में दिग. जिनमंदिर निर्माण कराया एवं पूज्य गुरुदेवश्री के शुभहस्ते प्रतिष्ठा में विशेष सहयोग दिया।

सन् १९८८ में ७० यात्रियों सहित २५ दिवसीय दक्षिण तीर्थयात्रा संघ निकाला एवं व्यवसाय से निवृत्त होकर अधिकांश समय सोनगढ़ में रहकर आत्म-साधना करते थे।

हम हैं आपके बताए मार्ग पर चलनेवाले

पुत्र : दुलीचन्द, पन्नालाल, मोतीलाल, प्रेमचंद एवं समस्त गिड़िया कुटुम्ब।

पुत्रियाँ : ब्र. ताराबेन एवं ब्र. मैनाबेन।

श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रंथमाला का ४१ पुष्प

जैनधर्म की कहानियाँ

(भाग -३१)

(तीर्थंकर भगवान श्री नेमिनाथ अपरनाम हरिवंश पुराण)

लेखक :

ब्र. हरिभाई सोनगढ़

सम्पादक :

पण्डित रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर

प्रकाशक :

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन, खैरागढ़ – ४९१ ८८१

मो. ९४२४१११४८८

और

श्री कहान स्मृति प्रकाशन, कहान रश्मि, सोनगढ़

मो. ९४१४७१७८१६

प्रस्तुत संस्करण - १००० प्रतियाँ
(पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, जबलपुर (२, फरवरी २०२४)

न्यौछावर : 20 रुपये मात्र

अरेरे ! अपना आत्मा जो स्वभाव से ही अतिसुन्दर और सुखमयी है तथा आश्रय लेनेवाले को सुखदाता भी है, उसका विस्मरण कर नंदिसेन मुनि ने यह क्या जड़ शरीर की सुंदरता मांग ली। अरे ! इस मुनि पर्याय से तो मोक्ष मिल सकता था, जो अनंत सुखमयी और स्थिर है। जड़ शरीर में तो सुख भी नहीं और स्थिरता भी नहीं। अपने विपरीत विचारों से ही यह जीव हाथ में आया हुआ चिंतामणि रत्न छोड़कर काँच के टुकड़ों में संतुष्ट हो जाता है। अत: सुखस्वरूप होकर भी सदा दु:खी रहता है। – इसी पुस्तक से साभार

प्राप्ति स्थान

१. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२०१५

२. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली**
कहाननगर, वेलतगांव रास्ता, लामरोड, देवलाली, नासिक-४२२ ४०१

३. **तीर्थधाम मंगलायतन,**
पो.- सासनी-२०४ २१६ जिला- हाथरस (उ.प्र.)

४. **श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट,** आचार्य कुन्दकुन्द नगर,
सोनागिर सिद्धक्षेत्र-४७५ ६८५, जिला-दतिया (म.प्र.)

५. **श्री रमेशचंद जैन, जयपुर** मो. ८६१९९ ७५९६५, ९४१४७१७८१६

प्रकाशकीय

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी द्वारा प्रभावित आध्यात्मिक क्रान्ति को जन-जन तक पहुँचाने में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल का योगदान अविस्मरणीय है, उन्हीं के मार्गदर्शन में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थापना की गई है। फैडरेशन की खैरागढ़ शाखा का गठन २६ दिसम्बर, १९८० को पण्डित ज्ञानचन्दजी, विदिशा के शुभ हस्ते किया गया। तब से आज तक फैडरेशन के सभी उद्देश्यों की पूर्ति इस शाखा के माध्यम से अनवरत हो रही है।

इसके अन्तर्गत् स्वामीजी का सी. डी.व सामूहिक स्वाध्याय, पूजन, भक्ति आदि दैनिक कार्यक्रमों के साथ-साथ साहित्य प्रकाशन, साहित्य विक्रय, श्री वीतराग विद्यालय, ग्रन्थालय, मासिक विधान आदि गतिविधियाँ उल्लेखनीय हैं; साहित्य प्रकाशन के कार्य को गति एवं निरंतरता प्रदान करने के उद्देश्य से सन् १९८८ में श्रीमती धुड़ीबाई खेमराज गिड़िया ग्रन्थमाला की स्थापना की गई।

इस ग्रन्थमाला के परम शिरोमणि संरक्षक सदस्य ५१००१/- में, शिरोमणि संरक्षक सदस्य ३१००१/- में तथा परम संरक्षक सदस्य २१००१/- संरक्षक सदस्य ११००१/- में एवं परम सहायक सदस्य ५००१/- बनाये जाते हैं, जिनके नाम प्रत्येक प्रकाशन में दिये जाते हैं।

पूज्य गुरुदेव के अत्यन्त निकटस्थ अन्तेवासी एवं जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को आत्मसात करने एवं लिपिबद्ध करने में लगा दिया – ऐसे ब्र. हरिभाई का हृदय जब पूज्य गुरुदेवश्री का चिर-वियोग (वीर सं. २५०६ में) स्वीकार नहीं कर पा रहा था, ऐसे समय में उन्होंने पूज्य गुरुदेवश्री की मृत देह के समीप बैठे-बैठे संकल्प लिया कि जीवन की सम्पूर्ण शक्ति एवं सम्पत्ति का उपयोग गुरुदेवश्री के स्मरणार्थ ही खर्च करूँगा। तब श्री कहान स्मृति प्रकाशन का जन्म हुआ और एक के बाद एक गुजराती भाषा में सत्साहित्य का प्रकाशन होने लगा, लेकिन अब हिन्दी, गुजराती दोनों भाषा के प्रकाशनों में श्री कहान स्मृति प्रकाशन का सहयोग प्राप्त हो रहा है, जिसके परिणाम स्वरूप नये-नये प्रकाशन आपके सामने हैं।

साहित्य प्रकाशन के अन्तर्गत् जैनधर्म की कहानियाँ भाग १ से ३१ तक एवं लघु जिनवाणी संग्रह : अनुपम संग्रह, चौबीस तीर्थंकर महापुराण (हिन्दी-गुजराती), पाहुड़ दोहा-भव्यामृत शतक-आत्मसाधना सूत्र, विराग सरिता तथा लघुतत्त्वस्फोट, अपराध क्षणभर का (कॉमिक्स) – इसप्रकार ४१ पुष्पों में लगभग ७ लाख ३५ हजार से अधिक प्रतियाँ प्रकाशित होकर पूरे विश्व में धार्मिक संस्कार सिंचन का कार्य कर रही हैं।

प्रस्तुत संस्करण में तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ प्रभु का पवित्र जीवन चरित्र एवं हरिवंश कथा का संक्षिप्त में वर्णन किया है। इसका लेखन ब्र. हरिलालजी द्वारा किया गया है। इसके स्वाध्याय से हमें सर्वज्ञता की महिमा आवेगी, क्रमबद्ध पर्याय का भी बोध होगा। इसका सम्पादन पण्डित रमेशचंद जैन शास्त्री, जयपुर ने किया है। अत: हम आपके के आभारी हैं।

लाभ बाल युवा वृद्ध सभी वर्ग के लोग ले रहे हैं, यही इनकी उपयोगिता तथा आवश्यकता सिद्ध करती है। इसी कारण इनकी निरन्तर मांग बनी हुई है।

आशा है इसका स्वाध्याय कर सभी पाठक गण अवश्य ही बोध प्राप्त कर सन्मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करेंगे।

साहित्य प्रकाशन फण्ड, आजीवन ग्रन्थमाला परमशिरोमणि संरक्षक, शिरोमणि संरक्षक, परमसंरक्षक एवं संरक्षक सदस्यों के रूप में जिन महानुभावों का सहयोग मिला है, हम उन सबका भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं, आशा करते हैं कि भविष्य में भी सभी इसी प्रकार सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

विनीत:

मोतीलाल जैन	पं. अभय जैन शास्त्री
अध्यक्ष	**साहित्य प्रकाशन प्रमुख**

पुस्तक प्राप्ति, सहयोग राशि एवं बिल भुगतान शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर ट्रस्ट, खैरागढ़ के नाम से भारतीय स्टेट बैंक, खैरागढ़ खाता क्रमांक 10743382296 IFSC-SBIN0000524 में जमा कराके, निम्न मो. नं. 9424111488 पर सूचना देकर रसीद प्राप्त कर सकते हैं।

विनम्र आदराञ्जली

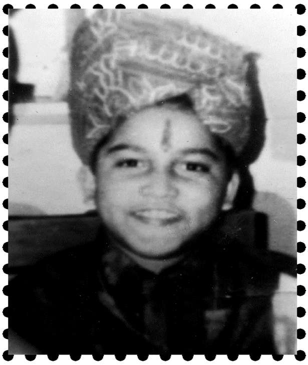

जन्म
१/१२/१९७८
(खैरागढ़, म.प्र.)

स्वर्गवास
२/२/१९९३
(दुर्ग पंचकल्याणक)

स्व. तन्मय (पुखराज) गिड़िया

अल्पवय में अनेक उत्तम संस्कारों से सुरभित, भारत के सभी तीर्थों की यात्रा, पर्वों में यम-नियम में कट्टरता, रात्रि भोजन त्याग, टी.वी. देखना त्याग, देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन आदि छह आवश्यक में हमेशा लीन, सहनशीलता, निर्लोभता, वैरागी, सत्यवादी, दान शीलता से शोभायमान तेरा जीवन धन्य है।

अल्पकाल में तेरा आत्मा असार-संसार से मुक्त होगा (वह स्वयं कहता था कि मेरे अधिक से अधिक ३ भव बाकी हैं।) चिन्मय तत्त्व में सदा के लिए तन्मय हो जावे – ऐसी भावना के साथ यह वियोग का वैराग्यमय प्रसंग हमें भी संसार से विरक्त करके मोक्षपथ की प्रेरणा देता रहे – ऐसी भावना है।

हम हैं

दादा	स्व. श्री कंवरलाल जैन	**दादी**	स्व. मथुराबाई जैन
पिता	श्री मोतीलाल जैन	**माता**	श्रीमती शोभादेवी जैन
बुआ	श्रीमती ढेलाबाई	**फूफा**	स्व. तेजमाल जैन
जीजा	श्री शुद्धात्मप्रकाश जैन	**जीजी**	सौ. श्रद्धा जैन, विदिशा
जीजा	श्री योगेशकुमार जैन	**जीजी**	सौ. क्षमा जैन, धमतरी

ग्रन्थमाला सदस्यों की सूची

परमशिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्रीमती सूरजबेन अमुलखभाई सेठ, मुम्बई
एक मुमुक्षु परिवार दादर ह. जयसुखभाई खाटड़ीया
पारसमल महेन्द्रकुमार जैन, ह. सरिता बेन तेजपुर
श्री निर्मलजी बरडिया स्मृति ह. प्रभा जैन राजनांदगांव

शिरोमणि संरक्षक सदस्य

श्री हेमल भीमजी भाई शाह, लन्दन
श्री विनोदभाई देवसीभाई कचराभाई शाह, लन्दन
श्री स्वयं शाह ओस्त्रो ह. शीतल विजेन, लन्दन
श्रीमती ज्योत्सना बेन विजयकान्त शाह, अमेरिका
श्रीमती मनोरमादेवी विनोदकुमार, जयपुर
पं. श्री कैलाशचन्द पवनकुमार जैन, अलीगढ़
श्री जयन्तीलाल चिमनलाल शाह ह. सुशीलाबेन अमेरिका
श्रीमती सोनिया समीत भायाणी प्रशांत भायाणी, अमेरिका
श्रीमती ऊषाबेन प्रमोद सी. शाह, शिकागो
श्रीमती कुसुमबेन चन्द्रकान्तभाई शाह, मुलुण्ड

परमसंरक्षक सदस्य

झनकारीबाई खेमराज बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट,खैरागढ़
मीनाबेन सोमचन्द भगवानजी शाह, लन्दन
श्री अभिनन्दनप्रसाद जैन, सहारनपुर
श्रीमती ज्योत्सना महेन्द्र मणीलाल मलाणी, माटुंगा
ब्र. कुसुम जैन, कुम्भोज बाहुबली
श्रीमती पुष्पलता अजितकुमारजी, छिन्दवाड़ा
सौ. सुमन जैन जयकुमारजी जैन डोगरगढ़
स्व. मनहरभाई ह. अभयभाई इन्द्रजीतभाई, मुम्बई
श्री निलय ढेढिया, पार्ला मुम्बई
श्री कुन्दकुन्द कहान जैन तत्त्वप्रचार समिति, दादर
पीनल बेन प्रकाशभाई संघवी, घाटकोपर
मीताबेन परिवार बोरीबली
श्रीमती समता-अमितकुमार जैन, कानपुर
श्रीमती पुष्पा बेन रायसीभाई गाड़ा, घाटकोपर
धरणीधर हीराचंद दामाणी, सोनगढ़
श्रीमती रीमा-विकाश सेठी अंधेरी ह. बेलाबेन सोनी

संरक्षक सदस्य

श्रीमती शान्तिदेवी कोमलचंद जैन, नागपुर
श्रीमती पुष्पाबेन कांतिभाई मोटाणी, बम्बई
श्रीमती हंसुबेन जगदीशभाई लोदरिया, बम्बई
श्रीमती लीलादेवी श्री नवरत्नसिंह चौधरी, भिलाई
श्रीयुत प्रशान्त-अक्षय-सुकान्त-केवल, लन्दन
श्रीमती पुष्पाबेन भीमजीभाई शाह, लन्दन
श्री सुरेशभाई मेहता, बम्बई एवं श्री दिनेशभाई, मोरबी
श्री महेशभाई, बम्बई, प्रकाशभाई मेहता, राजकोट
श्री रमेशभाई नेपाल, श्री राजेशभाई मेहता, मोरबी
श्रीमती वसंतबेन जेवंतलाल मेहता, मोरबी
स्व.हीराबाई, हस्ते-श्री प्रकाशचंद मालू, रायपुर
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, खैरागढ़
स्व. मथुराबाई कँवरलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती कंचनदेवी दुलीचन्द जैन गिड़िया, खैरागढ़
दमयन्तीबेन हरीलाल शाह चैरिटेबल ट्रस्ट, मुम्बई
श्रीमती रूपाबैन जयन्तीभाई ब्रोकर, मुम्बई
श्री जम्बूकुमार सोनी, इन्दौर
श्रीमती स्नेहलता ध.प. जैनबहादुरजी जैन, कानपुर
श्रीमती विमलाबाई सुरेशचंद जैन, कोलकाता
स्व. अमराबाई-घेवरचंद ह. नरेन्द्र डाकलिया, नांदगांव
श्रीमती सुशीला बेन सुरेशभाई शाह, अहमदावाद
श्रीमती सुशीलाबाई उत्तमचंद गिड़िया, रायपुर
श्री बाबूलाल तोताराम लुहाड़िया, भुसावल
श्री तुषार नलिनकांत देसाई, पालड़ी
श्री ज्योत्सना बेन भूपतभाई शाह, देवलाली
श्री ज्ञानचंद जैन, दिल्ली
श्रीमती रसिला बेन हंसमुख भाई शाह, अमेरिका

परम सहयोगी सदस्य

श्रीमती शोभादेवी मोतीलाल गिड़िया, खैरागढ़
श्रीमती ढेलाबाई तेजमाल नाहटा, खैरागढ़
श्री शैलेषभाई जे. मेहता, नेपाल
ब्र. ताराबेन ब्र. मैनाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चन्द्रकला गौतमचन्द बोथरा, भिलाई
श्रीमती गुलाबबेन शांतिलाल जैन, भिलाई
श्रीमती राजकुमारी महावीरप्रसाद सरावगी, कलकत्ता
श्रीमती ममता-रमेशचन्द जैन शास्त्री, जयपुर
श्री प्रफुल्लचन्द संजयकुमार जैन, भिलाई
स्व. लुनकरण, झीपुबाई कोचर, कटंगी
श्रीमती पुष्पाबेन चन्दुलाल मेघाणी, कलकत्ता
स्व. कंकुबेन रिखबदास जैन ह. शांतिभाई, बम्बई
एक मुमुक्षुभाई, ह. सुकमाल जैन, दिल्ली

स्व. रामलाल पारख, ह. नथमल नांदगांव
श्रीमती जैनाबाई, भिलाई ह. कैलाशचन्द शाह
सौ. रमाबेन नटवरलाल शाह, जलगाँव
श्री फूलचंद विमलचंद झांझरी, उज्जैन
श्रीमती पतासीबाई तिलोकचंद कोठारी, जालबांधा
श्री छोटालाल केशवजी भायाणी, बम्बई
श्रीमती जशवंतीबेन बी. भायाणी, घाटकोपर
स्व. भैरोदान संतोषचन्द कोचर, कटंगी
श्री तखतराज कांतिलाल जैन, कलकत्ता
श्रीमती सुधा सुबोधकुमार सिंघई, सिवनी
गुप्तदान, हस्ते – चन्द्रकला बोथरा, भिलाई
सौ. कमलाबाई कन्हैयालाल डाकलिया, खैरागढ़
श्री सुगालचंद विरधीचंद चोपड़ा, जबलपुर
श्रीमती सुनीतादेवी कोमलचन्द कोठारी, खैरागढ़
श्रीमती स्वर्णलता राकेशकुमार जैन, नागपुर
श्रीमती कंचनदेवी पन्नालाल गिड़िया, खैरागढ़
श्री शान्तिकुमार कुसुमलता पाटनी, छिन्दवाड़ा
श्री छीतरमल बाकलीवाल, जैन ट्रेडर्स, पीसांगन
श्री किसनलाल देवड़िया ह. जयकुमारजी, नागपुर
श्री सुदीपकुमार गुलाबचन्द, नागपुर
सौ. शीलाबाई मुलामचन्दजी, नागपुर
सौ. मोतीदेवी मोतीलाल फलेजिया, अहमदाबाद
समकित महिला मंडल, डोंगरगढ़
श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सागर
सौ. शांतिदेवी धनकुमार जैन, सूरत
श्री चिन्द्रूप शाह, ह. श्री दिलीपभाई बम्बई
स्व. फेफाबाई पुसालालजी, बैंगलोर
ललितकुमार डॉ. श्री तेजकुमार गंगवाल, इन्दौर
स्व. नोकचन्दजी, ह. केशरीचंद सावा सिल्हाटी
कु. वंदना पन्नालालजी जैन, झाबुआ
कु. मीना राजकुमार जैन, धार
सौ. वंदना संदीप जैनी ह.कु. श्रेया जैनी, नागपुर
सौ. केशरबाई ध.प. स्व. गुलाबचन्द जैन, नागपुर
जयवंती बेन किशोरकुमार जैन
श्री मनोज शान्तिलाल जैन
श्रीमती शकुन्तला अनिलकुमार जैन, मुंगावली
इंजी.आरती पिता श्री अनिलकुमार जैन, मुंगावली
श्रीमती पानादेवी मोहनलाल सेठी, गोहाटी
श्रीमती माणिकबाई माणिकचन्द जैन, इन्दौर
श्रीमती भूरीबाई स्व. फूलचन्द जैन, जबलपुर
श्री किशोरकुमार राजमल जैन, सोनगढ़
श्री जयपाल जैन, दिल्ली
श्री चेतना महिला मण्डल, खैरागढ़
श्रीमती किरण – एस.के. जैन, खैरागढ़
स्व.गैंदामल ज्ञानचन्द सुमतप्रसाद अनिल जैन,खैरागढ़
स्व. मुकेश गिड़िया स्मृति ह. सरला जैन, खैरागढ़
सौ. सुषमा जिनेन्द्रकुमार, खैरागढ़
श्रीमती श्रुति-अभयकुमार शास्त्री, खैरागढ़
सौ. अचरजकुमारी श्री निहालचन्द जैन, जयपुर
सौ. शोभाबाई भवरीलाल चौधरी, यवतमाल
सौ. ज्योति सन्तोषकुमार जैन, डोभी
श्री कस्तूरी बाई बल्लभदास जैन, जबलपुर
स्व.यशवंत छाजेड़ ह.श्री पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़
श्री आयुष्य जैन संजय जैन, दिल्ली
श्री सम्यक अरुण जैन, दिल्ली
श्री सार्थक अरुण जैन, दिल्ली
श्री केशरीमल नीरज पाटनी, ग्वालियर
श्री परागभाई हरिवदन सत्यपंथी, अहमदाबाद
श्रीमती नम्रता-प्रशम मोदी, सोनगढ़
श्री हेमलाल मनोहरलाल सिंघई, बोनकट्टा
स्व. दुर्गा देवी स्मृति ह. दीपचन्द चौपड़ा, खैरागढ़
शाह श्री कैलाशचन्दजी मोतीलालजी, भिलाई
श्रीमती प्रेक्षादेवी प्रवीणकुमारजी शास्त्री, रायपुर
लक्ष्मीबेन वीरचन्द शाह ह. शारदाबेन, सोनगढ़
श्रीमती चेतनाबेन पारुलभाई भायाणी, मद्रास
श्रीमती स्वाति-आशीष जैन, नवसारी
श्रीमती वर्षाबेन-निरंजनभाई, सुरेन्द्रनगर
श्रीमती रूवी-राजकुमार जैन, दुर्ग
श्रीमती विजया विजयकुमार जैन, विलासपुर
स्व. धरमचंद संचेती ह. किशोरकुमार संचेती, कटंगी
श्रीमती नेहाबेन-जितेन्द्र भाई गोगरी, माटुंगा
श्रीमती लक्ष्मीबेन शशांकभाई शाह, माटुंगा
श्री जयकुमार जैन, शिवपुरी
श्रीमती सुशीला बेन जयन्ती लाल गाला, माटुंगा
लक्ष्मी बेन, ब्र. कुन्ती बेन, सोनगढ़
कु. आरोही, श्रीमती परींदा-राहुल पारिख, न्यूजीलेण्ड
कु. श्रेया श्रीमती मीता-दीपक पारिख, मुम्बई

साहित्य प्रकाशन फण्ड

श्रीमती सुशीलाबेन जयन्तीलाल शाह, अमेरिका	5001/-
श्रीमती जुहीबेन राजीवभाई मेहता, जामनगर	2501/-
श्रीमती हंसाबेन धरणीधर दामाणी, अहमदावाद	2001/-
श्री दोडल परिवार, घाटकोपर	1501/-
श्रीमती मंजुलाबेन रसिकभाई, घाटकोपर	1001/-
श्रीमती आशाबेन जितेन्द्रभाई मेहता, मुम्बई	1001/-
श्रीमती बालूबेन प्रभुदास कामदार, मुम्बई	1001/-
श्रीमती चन्द्रकला प्रेमचन्द जैन, ह. श्रुति-अभय, खैरागढ़	1001/-
श्रीमती शिवानी-सम्यक् जैन, खैरागढ़	701/-
ब्र. जमनाबेन स्मृति ह.पन्नालाल छाजेड़, खैरागढ़	701/-
श्रीमती बरखा-मनोज टाटिया ह. अभय, आर्यिक, खैरागढ़	601/-
श्रीमती कंचनबाई पन्नालाल जैन ह.श्री मनोज जैन, खैरागढ़	501/-
श्री शुभम गंगवाल, बड़ौदा	501/-
श्रीमती मुस्कान-सम्यक् जैन, विदिशा	501/-
ब्र. ताराबेन मैनाबेन, सोनगढ़	501/-
स्व. श्रीमती कंचन-रजनी ह.श्री दुलीचंद-कमलेश जैन, खैरागढ़	501/-
ढ़ेलाबाई चैरी. ट्रस्ट ह.श्रीमती शोभा-मोतीलाल जैन, खैरागढ़	501/-
श्री झनकारीबाई खेमराज बाफना चैरीटेवल ट्रस्ट, खैरागढ़	501/-
श्रीमती सौनम-विनयकुमार चौपड़ा जैन, खैरागढ़	301/-
मा. मर्मज्ञ ह.श्रीमती पूजा-साकेत जैन, बड़वानी	201/-

❀ ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन्' रचित ❀

देखा पशुओं को रुका हुआ प्रभु हो गये गम्भीर।
धिक्-धिक् ऐसी विषयांधता, दीखे न पराई पीर॥
इन भोगों की अग्नि में कितने जीव हैं जलते।
और भोगी भी परिपाक में, भव-भव में दुख सहते॥
पीड़ा है विषय-कषायों की, मृत्यु से भयंकर।
हों सहने में असमर्थ तब फिर मूढ़ जन फँसकर॥
दोई भव नाशें, मोही व्यर्थ मोह भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥

तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ

नेमिनाथ प्रभु परम विरागी सिद्धपुरी में सोहें।
हुए पंचकल्याणक सौराष्ट्र में भविजन का मन मोहें।।
किया त्याग राजुल का प्रभु ने, मुक्ति लगी अतिप्यारी।
तव जीवन आदर्श प्रभु जी, सबको मंगलकारी।।

धर्मरथ के चक्र की 'नेमि' (धुरी) समान बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथस्वामी हमारे धर्मरथ को मोक्षपुरी में पहुँचावें। पशुओं को बंधन से छुड़ानेवाले प्रभु नेमिनाथ हमें भी भवबन्धन से छुड़ावें। पूर्ण आनन्दधाम में विराजमान प्रभु ! हमें भी आनन्दधाम में स्थापित करें। जिन्होंने विवाह के समय ही वैराग्य धारण किया, राजुलदेवी को संसार से विरक्त करके मोक्षसाधना की प्रेरणा दी, स्वयं मोक्षपुरी में सिधारने पर भी हृदय में विराजमान हैं, वे भगवान नेमिनाथ हमें भी अपने जैसा उत्तम मंगल-जीवन प्रदान करें। अहा ! आत्मसाधनामय उनके वीतरागी जीवन का यह पुराण भव्यजीवों को विषयकषायों से छुड़ाकर आत्महित की प्रेरणा देनेवाला है। भव्यजीव भक्तिपूर्वक उसका श्रवण करो, पठन करो ! पुराण द्वारा उन प्रभु के ज्ञान-वैराग्यमय पवित्र जीवन का चिन्तवन ही उनका स्तवन है। उस पवित्र जीवन का चिन्तन अपने भावों को मंगलरूप करता है और मुक्ति की साधना में लगाता है।

पूर्वभव-छठवाँ : चिन्तागति विद्याधर

(यद्यपि प्रत्येक जीव के पूर्वभव अनंत हैं, फिर भी जिनके पूर्वभव सीमित रह जाते हैं उनके पूर्वभव कहने में आ जाते हैं। इसी अपेक्षा यहाँ श्री पार्श्वनाथ प्रभु के छटवाँ पूर्वभवों की चर्चा की जा रही है।)

भगवान नेमिनाथ पूर्व छठवें भव में पुष्करवरद्वीप में चिन्तागति नाम के विद्याधर थे। उनके दूसरे दो छोटे भाई थे – एक का नाम मनोगति था और दूसरे का चपलगति था। अनेक विद्याओं के साथ आकाशगामी विद्या में भी वे तीनों भाई पारंगत थे।

उससमय प्रीतिमती नामक एक राजकुमारी अति रूपवती और गतिविद्या में महान कुशल थी। उसने अभिमानपूर्वक ऐसी प्रतिज्ञा की थी कि गतिस्पर्धा में मुझे जो पराजित कर देगा, मैं उसी के साथ ही विवाह करूँगी। उसकी योजनानुसार मेरु के शिखर से एक माला नीचे फेंकी जाती, वह माला नीचे गिरने से पूर्व, मेरु की तीन प्रदक्षिणा देकर झेल लेनी थी। उस स्पर्धा में कितने ही राजकुमार पराजित हो चुके थे। चिन्तागति विद्याधर के दोनों भाई – मनोगति और चपलगति भी राजकुमारी पर मोहित होकर उससे विवाह करने की इच्छा से गये; परन्तु वे भी उस गतियुद्ध में हारकर तथा अपमानित होकर लौट आये। अपने भाईयों का अपमान देखकर चिन्तागति ने गतियुद्ध में उस राजकुमारी को पराजित कर दिया और राजकुमारी उसे वरमाला पहिनाने को तैयार हुई, तब उसके साथ विवाह करने से इन्कार करते हुए चिन्तागति ने कहा– कि तुम मेरे छोटे भाइयों को माला पहिनाओ; क्योंकि वे तुमसे विवाह करने की इच्छा रखते थे।

राजकुमारी ने कहा – गतियुद्ध में आपने ही मुझे जीता है इसलिये मैं आपसे ही विवाह करूँगी, नहीं तो कुँवारी रहकर दीक्षा ग्रहण करूँगी। आपके सिवा समस्त पुरुष मुझे बन्धु समान हैं।

चिन्तागति ने कहा – मेरे छोटे भाईयों ने जिसके साथ विवाह करने की इच्छा की हो, उसके साथ मैं विवाह करूँ, वह मेरे लिये शोभास्पद नहीं है। इसप्रकार चिन्तागति विद्याधर के (नेमिनाथ के जीव ने) विवाह करने से इन्कार करने पर, अन्त में राजकुमारी प्रीतिमती ने दीक्षा ले ली और आर्यिकाव्रत धारण किये। [पुराणों में राजकुमारी प्रीतिमती का वर्णन यहीं तक आता है। उसके बाद अगले भवों में उसका क्या हुआ, तत्सम्बन्धी उल्लेख किसी पुराण में नहीं मिलता, परन्तु अनुमान से ऐसा लगता है कि वह जीव कुछ भव धारण करके राजमती (राजुल) हुई हो और नेमिनाथ के जीव ने चिन्तागति के भव में जिसप्रकार प्रीतिमती के साथ विवाह करने से इन्कार किया था, उसीप्रकार उन्हीं संस्कारों के बल से, इस भव में भी राजमति से विवाह का इन्कार करके स्वयं वैराग्य प्राप्त किया हो और राजमति को भी वैराग्य की प्रेरणा दी हो। इसके अतिरिक्त बीच के भवों में वे नेमि-राजुल के जीव एक-दूसरे के साथ रहे – इसका कोई उल्लेख पुराणों में देखने को नहीं मिलता।]

पाँचवा-पूर्वभव : चौथे स्वर्ग में देव

चिन्तागति के विवाह से इन्कार करने पर राजकुमारी ने दीक्षा ग्रहण कर ली। उसका ऐसा पराक्रम देखकर अन्य अनेक जीव भी संसार से विरक्त हो गये। चिन्तागति आदि तीनों राजकुमारों ने भी संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा धारण की और संयमपूर्वक देहत्याग करके तीनों भाई चौथे स्वर्ग में देव हुए।

चौथा-पूर्वभव : अपराजितकुमार

पश्चिम विदेहक्षेत्र में सीतोदा नदी के किनारे सिद्धपुर नाम के सुन्दर नगर में अर्हत्‌दास राजा राज्य करते थे। चौथे स्वर्ग से आयु पूर्ण होने पर वह देव (भूतकाल के चिन्तागति विद्याधर और भविष्यकाल के नेमिनाथ तीर्थंकर का जीव) अर्हत्‌दास राजा के कुँवररूप में अवतरित हुआ उसका नाम अपराजित था।

उनके महाभाग्योदय से एकबार उस नगरी में विमलवाहन तीर्थंकर का पदार्पण हुआ। राजा और प्रजा अत्यन्त हर्षपूर्वक प्रभु के दर्शनार्थ गये। प्रभु के उपदेश से धर्म प्राप्त करके महाराजा अर्हत्दास संसार से विरक्त हुए और पुत्र अपराजितकुमार को राज्य का भार सौंपकर स्वयं जिनदीक्षा अंगीकार कर ली। अपराजितकुमार ने भी प्रभु के उपदेश से चैतन्यतत्त्व की अपूर्व महिमा समझकर प्रज्ञाछैनी द्वारा मोह को छेदकर अपूर्व सम्यग्दर्शन प्रकट किया और श्रावक के व्रत भी धारण किये। अहा, एक भावी तीर्थंकर ने मोक्षमार्ग में प्रवेश किया।

महाराजा अपराजित धर्मपालन पूर्वक राज्य का संचालन करते थे। एकबार उन्होंने सुना कि उनके पिताश्री अर्हत् मुनिराज को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है। उससे अत्यन्त हर्षित होकर वे अपने पिताश्री अर्हत् केवली तथा विमलवाहन तीर्थंकर के दर्शनार्थ चले। मार्ग में जाते-जाते उन्होंने सुना कि वे दोनों तो मोक्ष पधार गये हैं। उनके मोक्षगमन की बात सुनकर अपराजित राजा को आघात लगा और तीव्र भक्तिभाववश बिना विचारे ऐसी प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मुझे उन भगवन्तों के दर्शन नहीं होंगे, तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। अरे, एक भावी तीर्थंकर को भूतकालीन तीर्थंकर के प्रत्यक्ष दर्शन की अभिलाषा जागृत हुई; परन्तु क्या मोक्ष में गये हुए परमात्मा लौटकर आयेंगे ? हाँ, क्यों नहीं आयेंगे? क्या ज्ञान के बल से साधक जीव सिद्ध भगवान को अपने अन्तर में नहीं उतारते ? तो इन धर्मात्मा भावी तीर्थंकर की भावना पूर्ण क्यों नहीं होगी ?

अपराजित राजा तो अडिग होकर उन भगवन्तों के ध्यान में बैठ गये। भगवन्तों के दर्शन बिना आठ दिन निराहार बीत गये। आठ दिन के उपवास होने पर पुण्ययोग से एक देव ने उनकी भक्ति से प्रभावित होकर अपनी विक्रिया द्वारा समवसरण जैसी दिव्यरचना की। उसमें मानों तीर्थंकर विमलवाहन तथा अर्हत् केवली विराजते हों – ऐसा दृश्य बनाया। उस

दिव्य दृश्य में भगवन्तों के दर्शन करके राजा अपराजित का चित्त अति प्रसन्न हुआ। अहा, आत्मार्थी जीवों के हृदय की हिलोरें भी भिन्न प्रकार की होती हैं। और **एक दूसरा महान आश्चर्य यह भी देखो कि जिस भक्ति से स्वर्ग के देव प्रभावित हुए, उससे भी सिद्ध भगवन्तों को किंचित् प्रसन्नता या राग जागृत नहीं हुआ। वे तो अपने वीतराग स्वरूप में ही स्थिर रहकर मोक्ष में ही विराजमान रहे। धन्य है जैन भगवन्तों की वीतरागता !**

वे राजा अपराजित धर्म भावनापूर्वक सिंहपुरी का राज्य करते थे। एकबार उन्हें आकाशमार्ग से पधारे दो मुनिवरों के दर्शन का लाभ प्राप्त हुअ, उनके दर्शन कर राजा को महान आश्चर्य और अक्षय-निधान की प्राप्ति जैसी प्रसन्नता हुई। विनयपूर्वक वन्दना करके उनका उपदेश भी सुना; फिर कहा – हे मुनि-भगवन्तो ! आपके दर्शन से मैं धन्य हो गया। आपको देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है और अन्तर से भ्रातृस्नेह उमड़ रहा है। मुझे ऐसा लग रहा है – जैसे पहले आपको कहीं देखा हो और आप मेरे पूर्व परिचित भ्राता हो।

तब मुनिराज बोले – हे राजन् सुनो ! आपकी बात सत्य है। इस भव में नहीं, किन्तु पूर्वभव में आपने हमें देखा है। किसप्रकार ....सो सुनो–

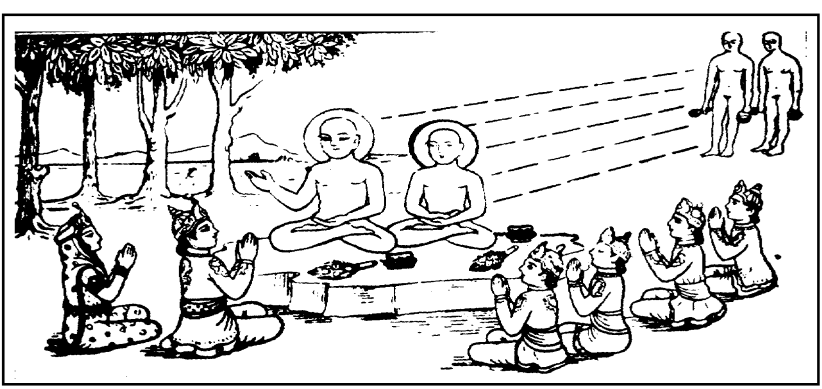

राजा अपराजित उत्सुकतापूर्वक अपने पूर्वभव की बात सुनने लगे और मुनिराज कहने लगे –

हे राजा ! पूर्वभव में आप चिन्तागति नाम के विद्याधर थे और हम दोनों आपके लघुभ्राता (मनोगति तथा चपलगति) थे। प्रीतिमती राजकुमारी के निमित्त से वैराग्य प्राप्त करके हम तीनों भाईयों ने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली और स्वर्ग में गये। वहाँ से हम दोनों पूर्वविदेह में विद्याधर राजकुमार के रूप में अवतरित हुए। एकबार हम दोनों स्वयंभू तीर्थंकर के समवसरण में गये। वहाँ हमने अपने तीनों के पूर्वभव की बात सुनी और वैराग्य प्राप्त करके जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गये। पूर्वभव के स्नेह के कारण हमें यह जानने की इच्छा हुई कि हमारे ज्येष्ठ भ्राता चिन्तागति वर्तमान में कहाँ हैं ? भगवान की वाणी से जाना कि आप पश्चिमविदेह में अपराजित राजा के रूप में अवतरित हुए हैं। यह जानकर हे राजन्! पूर्वभव के स्नेहवश हम यहाँ आये हैं। आपको जो भ्रातृवत् स्नेह उमड़ रहा है, उसका भी यही कारण है। जीव के नित्य होने के कारण पूर्वभव के संस्कार भी अपना कार्य करते रहते हैं। **हे बन्धु! पूर्वकर्म के उदय से प्राप्त भोगों को आपने दीर्घकाल तक भोगा है, अब उनसे विरक्त होओ; आपकी आयु मात्र एक मास शेष रही है, इसलिए शीघ्र आत्मकल्याण का विचार करो।**

अपने पूर्वभव के भ्राता ऐसे उन दोनों मुनिवरों के श्रीमुख से अपने पूर्वभव की तथा आत्महित की बात सुनकर राजा अपराजित को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा – हे मुनि भगवन्त ! निर्ग्रन्थ, निर्मोह होने पर भी पूर्वभव के स्नेहवश आपने मुझ पर महान उपकार किया है, सचमुच आप मेरे सच्चे हितैषी बन्धु हो।

मुनिराज ने परम वात्सल्यदृष्टि से कहा – हे राजन् ! आप मात्र हमारे पूर्वभव के भ्राता ही नहीं, किन्तु भावी तीर्थंकर हो और अगले पाँचवें

भव में तुम भरतक्षेत्र के बाईसवें तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करोगे। ऐसा उत्तम भविष्य कहकर तथा राजा को आशीर्वाद देकर वे दोनों मुनिवर पूर्व विदेहक्षेत्र की ओर विहार कर गये।

तीसरा-पूर्वभव : सोलहवें अच्युत स्वर्ग में इन्द्र

मुनिवरों के श्रीमुख से अपने मोक्ष की बात सुनकर राजा अपराजित को जो आनन्द हुआ उसका क्या कहना। मोक्षार्थी को मोक्ष से बढ़कर दूसरी वस्तु और क्या होगी ? राजा का चित्त मोक्ष की साधना में तत्पर हुआ, अतः राजपाट छोड़कर उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण की। इतना ही नहीं, प्रायोपगमन नामक उत्कृष्ट संन्यास धारण करके वे एक महीने तक उत्तम आराधना करते रहे और अन्त में समाधिमरणपूर्वक देह त्यागकर सोलहवें अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुए।

अच्युत स्वर्ग के दिव्यवैभवों में उन धर्मात्मा इन्द्र ने बाईस सागरोपम के असंख्यात वर्ष बिताये, परन्तु वहाँ भी वे बाह्य सुखों में इतने मुग्ध नहीं हुए थे कि चैतन्यवैभव को भूल जायें। चैतन्य के अतीन्द्रिय सुख के समक्ष इन्द्रलोक के सुख भी उन्हें तुच्छ भासित होते थे और मोक्ष सुख की साधना तो निरन्तर चल ही रही थी। सच्चा अच्युतपद तो सिद्धपद है – ऐसा जाननेवाले वे अच्युतेन्द्र आयु पूर्ण होने पर अच्युतस्वर्ग से च्युत होकर मनुष्यलोक में अवतरित हुए।

दूसरा-पूर्वभव : हस्तिनापुर में सुप्रतिष्ठ राजा

उससमय इस भरतक्षेत्र के हस्तिनापुर में राजा श्रीचन्द्र राज्य करते थे। अच्युतेन्द्र का वह जीव उनके यशस्वी पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ, उसका नाम था सुप्रतिष्ठ। राजकुमार के युवावस्था को प्राप्त होने पर उसका राज्याभिषेक करके महाराजा श्रीचन्द्र ने जिनदीक्षा धारण की। राजा सुप्रतिष्ठ न्याय-नीतिनिपुण एवं आत्मज्ञानी थे। उनकी रानी का नाम सुनन्दा था। वे सदा जिनेन्द्र देव की पूजा करते और जैनधर्म की प्रतिष्ठा

बढ़ाते थे। उनके राज्य में सर्वत्र धर्मात्माओं एवं विद्वानों का सम्मान होता था। वे भक्तिपूर्वक मुनिवरों की सेवा करते थे। एकबार जब उनके द्वारा यशोधर मुनिराज को आहारदान दिया गया, तब देवों ने प्रसन्न होकर उनके आँगन में दुंदुभिनाद, रत्नवृष्टि आदि पंचाश्चर्य प्रकट किये थे। इसप्रकार उन्होंने गृहस्थ धर्म पालन करते हुए दीर्घकाल तक हस्तिनापुर का राज्य किया।

एक दिन वे राजा सुप्रतिष्ठ चाँदनी रात्रि में महल की छत पर खड़े आकाश की शोभा निहार रहे थे और विचार रहे थे कि जिसप्रकार असंख्य तारा मण्डलों से जगमगाता हुआ यह स्वच्छ आकाश शोभायमान है, उसीप्रकार अनन्त आत्मगुणों के आनन्दकारी प्रकाश से मेरा यह चैतन्यगगन सुशोभित है वह शोभा अन्तर के स्वानुभूतिरूप अतीन्द्रिय चक्षुओं से दृष्टिगोचर होती है। राजा सुप्रतिष्ठ ऐसा आत्मचिन्तन कर रहे थे कि इतने में...अचानक खररर...ध्वनि के साथ प्रकाश की तेज रेखा दिखायी दी। क्या हुआ ? आकाश से उल्कापात हुआ, एक विशाल तारा खिर गया। वह देखते ही राजा की विचारधारा में भी मानों चमक हुई। उनका चित्त संसार की अस्थिरता देखकर विरक्त हुआ। **वे विचारने लगे**

कि गगन से यह तारा तो खिर गया, परन्तु मेरा चैतन्यगगन इतना ध्रुव है कि उसमें से निजगुण का एक भी तारा कभी खिरता नहीं है।

इसलिए अनन्त गुणों के शाश्वत वैभव से भरपूर मेरा आत्मा ही मुझे शरणभूत है, इस संसार में अन्य कोई संयोग स्थिर या शरणभूत नहीं है। इसप्रकार वैराग्य प्राप्त करके उन राजा सुप्रतिष्ठ ने सुमन्दर जिनराज के समक्ष जिनदीक्षा धारण कर ली।

अन्तिम पूर्वभव : जयन्त विमान में अहमिन्द्र

रत्नत्रयधारी वे सुप्रतिष्ठ मुनिराज आत्मध्यानपूर्वक परिणामविशुद्धि करने लगे; उनको बारह अंग का ज्ञान उदित हुआ और दर्शनविशुद्धि आदि सोलह उत्तम भावनाओं द्वारा तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हुआ। अब एक भव पश्चात् तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करना निश्चित हो गया। अन्त समय में एक मास का सल्लेखना व्रत धारण करके उन्होंने समाधिमरण किया और अन्तिम पूर्वभव में जयन्त नामक अनुत्तर विमान में अहमिन्द्र हुए। सिद्धपद के समीपस्थ ऐसी उस अहमिन्द्र पर्याय में अपने चरित्र नायक नेमिनाथ तैंतीस सागर के असंख्यात वर्षों तक रहे। वहाँ वे निराकुल दिव्यसुख का अनुभव करते थे। यद्यपि उनके पास आत्मजनित तथा पुण्यजनित – दोनों प्रकार के उत्तम सुख थे, तथापि वे उनमें से आत्मजनित सुखों को ही उपादेय मानते थे। पुण्यजनित सुखों को तुच्छ एवं क्षणभंगुर जानते थे अर्थात् वास्तव में उन्हें दुःख ही समझते थे; क्योंकि वे जानते थे कि –

परयुक्त, बाधासहित, खण्डित, बन्धकारण, विषम है।
जो इन्द्रियों से प्राप्त वह सुख, इस तरह दुख ही अरे।।

स्वर्गलोक के इस पुण्य के बीच में मैं सदा रहनेवाला नहीं हूँ, परन्तु अपने आत्मसुख के साथ तो मैं सदा तन्मयरूप से रहूँगा। ऐसे भेद-विज्ञान के कारण वे महात्मा स्वर्गलोक के बाह्यसुखों में लीन

हरिवंश के नरपति पुत्र यदुराजा (श्री कृष्ण के परदादा)

(मथुरा के राजा)
सिंहकेतु (कलिंगी-रानी)
नरवृष्टि (सुमति-रानी)
उग्रसेन राजा (पद्मावती-रानी)
महासेन, देवसेन (पुत्री) गांधारी
(उग्रसेन राजा बने)
राजा कंस
(रानी जीवयशा)
प्रतिनारायण राजगृही
के राजा जरासंघ की पुत्री
अतिमुक्तक
देवकी पुत्री
(जो वसुराज की
पत्नि बनी)

(शौरीपुर के राजा)
सूरसेन (सुन्दरी-रानी)
अंधकवृष्टि (सुभद्रा-रानी)
10 पुत्र
2 पुत्रियाँ
समुद्रविजय-राजा
(ज्येष्ठपुत्र)
शिवादेवी-रानी
22वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ
वसुराज
(लघुपुत्र)
पुत्रियाँ
कुंती,
माद्री

पत्नि-रोहिणी
9वें बलभद्र बलदेव-1
(शंख का जीव)

पत्नि-देवकी (कंस की बहिन)
8
6 पुत्र (3 युगल)
(तद्भव मोक्षगामी)
गजकुमार
(तद्भव मोक्षगामी)
9वें नारायण श्रीकृष्ण (निर्नामिक का जीव)

(16 हजार रानियाँ, जिनमें मुख्य सत्यभामा आदि 8)
रुक्मणि
प्रद्युम्नकुमार (तद्भव मोक्षगामी)
जामवंती
शंबुकुमार (तद्भव मोक्षगामी)

नहीं हुए और पूर्व के पुण्यकर्मों की भी निर्जरा करके मोक्षसाधना की ओर आगे बढ़ते रहे। (यहाँ एक विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं कि नेमिनाथ प्रभु के इन अहमिन्द्रादि भवों में राजमति का जीव उनके साथ नहीं रहा है; क्योंकि जो अनुत्तरविमान में उत्पन्न हो, वह सम्यग्दृष्टि एवं एकावतारी होता है और उसे भविष्य में कभी स्त्रीपर्याय नहीं होती। राजमति का जीव यदि स्वर्ग में हो, तब भी तत्पश्चात् नेमिनाथ के भव में साथ रहने के लिये उसे बीच में अनेक भव धारण करने पड़ेंगे। परन्तु उनका उल्लेख कहीं देखने को नहीं मिलता।)

इसप्रकार मोक्षसाधना में आगे बढ़ते-बढ़ते उन अहमिन्द्र का भरतक्षेत्र में तीर्थंकररूप में अवतरित होने का समय निकट आ गया था। वे अवतार लें उसके पूर्व जिनके यहाँ वे अवतरित होनेवाले हैं, उन महाराजा समुद्रविजय की वंशपरम्परा का परिचय कर लें।

हरिवंश : नेमिप्रभु की वंशपरम्परा का परिचय

हरिवंश की परम्परा में सिंहकेतु, शूरसेन आदि अनेक मोक्षगामी राजा हुए। शूरसेन के पौत्र अंधकवृष्टि शौरीपुर/सूर्यपुर में राज्य करते थे।

उन अन्धकवृष्टि राजा के दस पुत्र थे, उनमें सबसे बड़े समुद्रविजय (श्रीनेमिनाथ के पिता) और सबसे छोटे वसुकुमार (श्रीकृष्ण के पिता); इसप्रकार श्रीकृष्ण तथा नेमिकुमार चचेरे भाई हुए।

उन दस पुत्रों के अतिरिक्त राजा अन्धकवृष्टि के कुन्ती और माद्री नाम की दो पुत्रियाँ थीं – उनके पुत्र पाण्डव। इसप्रकार नेमि-कृष्ण और पाण्डव मामा-बुआ के भाई थे।

अन्धकवृष्टि के चचेरे छोटे भाई नरवृष्टि, वे मथुरा में राज्य करते थे; उनका पुत्र उग्रसेन था और उन उग्रसेन का पुत्र कंस था। – इन सम्बन्धों का उल्लेख संक्षेप में यहाँ इसलिए किया है, क्योंकि आगे की कथा समझने के लिए यह उपयोगी होगा।

अन्धकवृष्टि का वैराग्य और निर्वाण

एकबार शौरीपुर नगरी में एकलविहारी महामुनिराज का पदार्पण हुआ। उन्होंने शौरीपुर के उद्यान में ही क्षपकश्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान प्राप्त किया। देवों ने आकर उनकी गंधकुटी का निर्माण किया, दिव्यध्वनि का प्रसारण होने लगा, उनकी दिव्यध्वनि सुनने महाराजा अन्धकवृष्टि (नेमिनाथ के पितामह) भी अपने परिजन पुरजनों सहित पहुँचे। उन्हें अपने पूर्वभव जानने की जिज्ञासा हुई, उसके समाधान स्वरूप केवली की दिव्यध्वनि में जो आया, उसका सार इसप्रकार है –

अन्धकवृष्टि का पूर्वभव वर्णन – अयोध्या में एक रुद्रदत्त (अन्धक वृष्टि का जीव) नामक ब्राह्मण था। अयोध्या में ही एक सुरेन्द्रदत्त नामक सेठ भी रहता था, जो रुद्रदत्त ब्राह्मण का मित्र था एवं कुबेर समान सम्पत्तिवान और जैनधर्म का परमभक्त था। वह जिनपूजादि कार्यों में प्रतिदिन दस स्वर्णमुद्रायें, अष्टमी को बीस तथा चतुर्दशी को चालीस स्वर्णमुद्रायें खर्च करता था।

एकबार सुरेन्द्रदत्त सेठ को बारह वर्ष के लिए परदेश जाना पड़ा; तब वह अपने मित्र रुद्रदत्त को विश्वासपात्र जानकर, उसपर भरोसा करके उसे जिनमन्दिर के पूजनादि कार्यों के लिये बहुत-सी स्वर्णमुद्रायें देकर बारह वर्ष के लिए विदेश चला गया। परन्तु इधर रुद्रदत्त उस धन को पूजनादि पुण्य कार्यों में न लगाकर, जुआ आदि पापकार्यों में खर्च कर दिया। इसप्रकार विश्वासघात करके उसने धर्म के लिए दिये गये द्रव्य को पापकार्यों में व्यय कर, महापाप किया और उसके फलस्वरूप वह अनेकों बार नरक में गया और तीव्र दुःख सहन किये। **बन्धुओ ! धर्म की विराधना के महापाप का फल जानकर स्वप्न में भी कभी धर्म की किंचित् भी विराधना नहीं करना; तन-मन-धन से भक्तिपूर्वक धर्म की सेवा करना।**

पश्चात् संसार में भटकता हुआ वह रुद्रदत्त का जीव हस्तिनापुरी में अति निर्धन गौतम नाम का मनुष्य हुआ। वह महारोगिष्ठ, दुर्गन्धयुक्त तथा कुरूप था। घर-घर भटक-भटक कर भीख माँगने पर भी उसका पेट नहीं भरता था। नरक का दुख कैसा होता है ? मानो, यह प्रत्यक्ष दिखाने के लिये ही उस पापी जीव को कर्मों ने मनुष्यलोक में भेजा हो। ऐसा होने पर भी उसकी मोक्ष की काललब्धि निकट होने से उसके अनुकूल एक योग्य प्रसंग बना।

उस हस्तिनापुरी नगरी में एकबार एक समुद्रसेन नाम के मुनिराज आहार के लिये पधारे। दरिद्र गौतम (रुद्रदत्त का जीव) भी उनके पीछे-पीछे चलने लगा। श्रवण सेठ ने मुनिराज को भक्तिपूर्वक आहारदान दिया और पश्चात् उनके साथ आये हुए उस रुद्रदत्त का जीव को भी भरपेट भोजन कराया। 'अरे, जीवन में एक क्षणभर मुनिराज के साथ रहने से मुझे इतना अच्छा भोजन प्राप्त हुआ तो अब क्यों न सदा उनके साथ रहूँ – जिससे मेरी दरिद्रता दूर हो जाये।' ऐसा सोचकर वह मुनि के साथ वन में गया और प्रार्थना की कि हे स्वामी ! मुझे भी अपने साथ रख लीजिये।

मुनिराज ने उसे निकटभव्य जानकर दिगम्बरी दीक्षा दे दी। अन्य मुनियों के साथ रहकर वह भी संयम, तप एवं शास्त्राभ्यास करने लगा। अहा, जैनधर्म तो उदार है, उसकी उपासना का फल महान है; पूर्वकालीन महापापों को एक क्षण में धो देता है। ऐसे जिनधर्म की आराधना करके उस गौतम (रुद्रदत्त के जीव) ने पूर्वभव की विराधना के समस्त पाप धो डाले और समाधिमरण करके वह ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ.... वहाँ से आकर इस शौरीपुर में अन्धकवृष्टि राजा हुआ है।

उन केवली भगवान की वाणी यह भी आया कि तुम चरमशरीरी हो और बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भी तुम्हारे कुल में तुम्हारे जेष्ठ्य पुत्र समुद्रविजय की भार्या शिवादेवी की कुक्षि से अवतार लेंगे।

यह सुनकर नेमिप्रभु के दादा अन्धकवृष्टि विचार करने लगे कि – अरे, कहाँ वे बारम्बार नरक के दु:ख ! और कहाँ अहमिन्द्र पद ! – दोनों में मैं अकेला ही था और अब मोक्ष में भी अकेला ही जाऊँगा।

जन्म-मरण एकहि करे, सुख-दु:ख वेदे एक।
नरकगमन भी एकला, मोक्ष जाये जीव एक॥
जो जीव तू है एकला, तो तज सब परभाव।
आत्मा ध्यावो ज्ञानमय, शीघ्र मोक्षसुख पाव॥

ऐसी भावना भाते हुए महाराजा अन्धकवृष्टि ने अपने जेष्ठ्य पुत्र समुद्रविजय को राज्याभिषेक करके दिगम्बरी दीक्षा धारण कर, कुछ काल पश्चात् क्षपकश्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान प्राप्त किया और तत्पश्चात् यथासमय अघातिया कर्मों का क्षयकर निर्वाण/सिद्धदशा को प्राप्त हुए।

कहाँ सातवें नरक के घोर दु:ख और कहाँ मोक्ष का परमसुख !

इससे हमें सहज ही यह बोध होता है कि वह रुद्रदत्त का जीव मोक्ष की साधना करने में समर्थ मनुष्य भव, उत्कृष्ट कुल व सभी प्रकार की अनुकूलता पाकर भी, विषयों में सुखबुद्धि रूप मिथ्यात्व के प्रभाव से मन्दिर पूजा के लिए प्राप्त द्रव्य को सप्त व्यसनादि में लगाकर चोरी आदि निकृष्ट कार्यों को करके नरकादि के दु:ख को प्राप्त हुआ। पश्चात् अनेक भवों में अनंत दु:ख भोगे, जिन्हें कथानक में पढ़ते समय हमारे रोंगटे खड़े हो गये।

हम भी कहीं इस दुर्लभ मनुष्य भव – उत्कृष्ट कुल, स्वस्थ्य आजीविका, स्वास्थ्य की अनुकूलता, पूर्ण आयु, जिनधर्म का समागम, देव-शास्त्र-गुरु की आराधना, जिनवाणी का अध्ययन-मनन-चिन्तन पाकर भी अपने मिथ्या अभिप्राय का

पोषण करते हुए कषायों को बढ़ाते हुए, पापों में लिप्त होकर, निश्चयाभास, व्यवहाराभास या फिर उभयाभास रूप अज्ञान में संतुष्ट होकर इस मनुष्य भव को रुद्रदत्त ब्राह्मण की तरह अपने अनंत दुखों का कारण तो नहीं बना रहे हैं।

अत: सावधान ! अब हम भी अपने ज्ञाता स्वभाव को जाने पहिचानें, आत्मा का स्वभाव मात्र सबको जानने का है, उन्हें करने धरने या भोगने का नहीं – ऐसा जानकर अपने जीवन में सहज शांति धारण कर स्वरूप की साधना करें, अहमिन्द्रादि पद पाकर भी उसमें लिप्त न होते हुए वहाँ से चय कर अंधकवृष्टि राजा (भगवान नेमीनाथ के दादा) के भव में मोक्ष प्राप्त करने वाले उस गौतम ब्राह्मण की तरह साधना करें न कि रुद्रदत्त ब्राह्मण की तरह अपने को अनंत दु:ख का भाजन – पात्र बनायें।

अहो ! चैतन्य में कोई अचिन्त्य (परमात्म) शक्ति है कि जिसकी उपासना से स्वयं परमात्मा हो जाता है। जो कभी सातवें नरक का जीव था वही जैनधर्म के सेवन से, चैतन्य की आराधना के प्रताप से परमात्मा बन जाता है। – ऐसे प्रतापवन्त जैनधर्म का हे भव्यजीवो! तुम भक्तिसहित सेवन करो।

वसुराजा के पूर्वभव (महाराजा समुद्रविजय के लघु भ्रात:) –

तद्भव मोक्षगामी राजा अन्धकवृष्टि के दस पुत्रों में से समुद्रविजय आदि नौ पुत्र तो पूर्वभव में भाई ही थे और दीक्षा लेकर मुनि हुए थे। वे स्वर्ग में जाकर पुन: यहाँ अवतरित हुए हैं। **दसवें पुत्र वसुराज थे, जिनकी पूर्वभव की कथा यहाँ लिखी जा रही है, जिसे पढ़कर आपके परिणाम वैराग्यमय होकर मोक्षमार्ग में लगेंगे।**

वसुराज पूर्वभव में नन्दिसेन नामक निर्धन मनुष्य था और दु:खों से व्याकुल होकर आत्महत्या का विचार कर रहा था, उससमय शंख

(बलभद्र का जीव) और निर्नामिक (श्रीकृष्ण का जीव) नामक दो मुनिराजों ने उसे देखा; उस नन्दिसेन को निकट भव्य जानकर तथा अगले भव में यह हमारे पिता होनेवाले हैं – ऐसा ज्ञान करके उन मुनियों ने उसे आत्महत्या करने से रोका और धर्म का स्वरूप समझाकर जिनदीक्षा दी। वे नन्दिसेन मुनि वैयावृत्य तप में प्रसिद्ध थे; उनको अनेक लब्धियाँ प्रकट हुईं थीं। जिनसे वैयावृत्य के लिये उपयोगी औषधादि पदार्थ उन्हें स्वयमेव प्राप्त हो जाते थे। इन्द्रसभा में भी उनके वैयावृत्य की प्रशंसा होती थी। अहो, जैनशासन में धर्मात्मा के वैयावृत्य की अपार महिमा है। जो मनुष्य समर्थ होने पर भी आपत्ति काल में धर्मात्मा की उपेक्षा करता है और वैयावृत्य द्वारा उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न नहीं करता उसका चित्त कठोर है, उसे धर्म की रुचि नहीं है।

नन्दिसेन (वसुराज का जीव) मुनिराज को धर्म का परम वात्सल्य था, वे मुनियों की परमसेवा करते थे; परन्तु वे एक भूल कर बैठे। वे दुर्गन्धित शरीर से त्रस्त होकर मुनि हुए थे; उस शल्य के कारण वे ऐसा निदान कर बैठे कि 'धर्म के प्रताप से भविष्य में मुझे अति सुन्दर-रूपवान शरीर प्राप्त हो' इसलिए स्वर्ग से जाकर फिर वह जीव अन्धकवृष्टि के सबसे छोटे पुत्र वसुराज हुए; उनका रूप अतिसुन्दर था।

अरेरे ! अपना आत्मा जो स्वभाव से ही अतिसुन्दर और सुखमयी है तथा आश्रय लेनेवाले को सुखदाता भी है, उसका विस्मरण कर नंदिसेन मुनि ने यह क्या जड़ शरीर की सुंदरता मांग ली। अरे ! इस मुनि पर्याय से तो मोक्ष मिल सकता था, जो अनंत सुखमयी और स्थिर है। जड़ शरीर में तो सुख भी नहीं और स्थिरता भी नहीं। अपने विपरीत विचारों से ही यह जीव हाथ में आया हुआ चिंतामणि रत्न छोड़कर काँच के टुकड़ों में संतुष्ट हो जाता है। अतः सुखस्वरूप होकर भी सदा दुःखी रहता है। अहो ! देखो

तो सही, इसे कहते हैं अपने हाथ से अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारना।

वसुराज ने अपने पूर्वभव में मुनिदशा पाकर भी देहातीत सिद्धदशा तो नहीं चाही और सुंदर देह मांगी, फल स्वरूप आज अपने ही महल में अपराधियों की तरह कैद रहना पड़ा। हे जीव ! अब तो ऐसे विपरीत विचार छोड़ दे।

महाराजा समुद्रविजय एवं वसुराज

अब, महाराजा समुद्रविजय शौरीपुर का राज्य संचालन करने लगे। उनका सबसे छोटा (दसवाँ) भाई वसुकुमार अतिरूपवान था; वह जब नगर में घूमने निकलता तब नगर की स्त्रियाँ उसके सुन्दर रूप पर मोहित हो जातीं और गृहकार्य भूल जाती थीं और अपने बच्चों को भी निराधार छोड़कर वे वसुकुमार को देखने दौड़ पड़ती। नगरजनों ने यह आपत्ति महाराजा समुद्रविजय के समक्ष प्रकट की, जिससे महाराजा ने उसे युक्तिपूर्वक राजमहल में ही रोककर नगर में जाना बन्द करा दिया। एकबार द्वारपाल ने जब उसे महल से बाहर जाने को रोका, तब उसे पता चला कि अरे, मुझे तो नजरकैद की भाँति राजमहल में बन्द कर दिया गया है। इससे दु:खी होकर वह नगर छोड़कर चला गया और छल-कपट से ऐसी अफवाह फैलायी कि वह स्वयं चिता में जल मरा हो।

इधर वसुकुमार के वियोग से समुद्रविजय आदि अत्यन्त दु:खी हुए; परन्तु निमित्तज्ञानियों ने कहा कि वसुकुमार जीवित हैं और अमुक वर्ष पश्चात् आपसे उनका मिलाप होगा।

कुमार वसुदेव मगध देश में राजगृही गया। वहाँ से एक विद्याधर उसे विजयार्द्ध पर्वत पर ले गया; फिर वह चम्पापुर गया। उसे जगह-जगह राजकन्याओं सहित अनेक प्रकार के वैभव की प्राप्ति हुई। अन्त में वह रोहिणी के स्वयंवर में गुप्तवेश में पहुँचा और रोहिणी ने उसे वरमाला पहनायी। इसलिए वहाँ स्वयंवर में आये हुए राजा अपमानित होकर

लड़ने लगे, परन्तु वसुकुमार को कोई जीत नहीं सका। अन्त में राजा समुद्रविजय लड़ने के लिये तैयार हुए; उन्हें देखकर वसुदेव ने एक चिट्ठी सहित उनके चरणों में एक बाण फेंका।

चिट्ठी में लिखा था कि 'हे पूज्यवर आपका छोटा भाई वसुकुमार आपके चरणों में नमस्कार करता है।' वह चिट्ठी पढ़ते ही, अहा ! मेरा भाई जीवित है और आज मुझे उसका मिलाप हुआ – ऐसे महान हर्षपूर्वक महाराजा समुद्रविजय शस्त्र डालकर अपने भाई से भेंटकर आनन्दित हुए, पश्चात् सभी ने आनन्दपूर्वक शौरीपुरी में प्रवेश किया। कुछ समय पश्चात् पहले जिनका कथन कर चुके हैं, उन **शंखमुनि का जीव स्वर्ग से आकर वसुकुमार की रानी रोहिणी की कुक्षि से पुत्ररूप में अवतरित हुआ।** ज्योतिषियों ने कहा कि यह **नौवाँ बलभद्र** होगा।

ज्ञातव्य है कि अभी बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का अवतार नहीं हुआ, उससे पूर्व उनके कुल-वंश का परिचय चल रहा है।

कंस का पूर्वभव

कंस का जीव पूर्वभव में वसिष्ठ नाम का बाबा था; परन्तु जैनमुनियों के उपदेश से धर्म प्राप्त करके वह जैन साधु हो गया था और एक-एक महीने के उपवास करता था। इसी समय मथुरा के राजा उग्रसेन ने अविचारी-भक्ति से ऐसी आज्ञा की कि इन मुनि को मासोपवास का पारणा मैं ही कराऊँगा, दूसरा कोई नहीं करायेगा। जब मुनिराज पारणा हेतु नगर में पधारते, तब अन्य कोई तो उनके पड़गाहन हेतु द्वारपेक्षण नहीं करते और राजा उग्रसेन विस्मरण या राज-काज के अन्य कार्यों में उलझे रहने के कारण उन्हें पारणा नहीं कराते। इसप्रकार मासोपवासी वसिष्ठ मुनि पारणा किये बिना तीन बार लौटे।

एकदिन उन्हें पता चला कि उग्रसेन की आज्ञा के कारण ही ऐसा हो रहा है, तब उनके मन में राजा उग्रसेन के प्रति वैरभाव जागृत हो उठा

और विवेक को चूरकर तथा धर्मभ्रष्ट होकर वसिष्ठ मुनि ऐसा निदान बंध (बुरा संकल्प) कर बैठे कि मैं अपने तप के प्रभाव से अगले भव में इस उग्रसेन राजा का पुत्र होकर इसका राज्य छीन लूँ और इसे कारागृह में डालूँ।

वैरभाव से वह वसिष्ठ मुनि अपने उत्तम पुण्य को बेच बैठा और मरकर मथुरा नगरी में उग्रसेन राजा का पुत्र हुआ; उसका नाम कंस था। उसके अशुभ लक्षण देखकर राजा उग्रसेन ने उसे मथुरा से निकाल दिया; वह थोड़ा बड़ा होने पर भटकते-भटकते शौरीपुर में आ गया और राजकुमार वसुदेव का चाकर बनकर रहने लगा।

श्रीकृष्ण की जन्मकथा

जिससमय की यह कथा है उससमय इस भरतक्षेत्र में इक्कीसवें तीर्थंकर श्री नमिनाथ का शासन चल रहा था और राजगृही नगरी में राजा जरासंध राज्य करता था। वह अर्धचक्रवर्ती (प्रतिवासुदेव) था; उसके शस्त्र-भण्डार में सुदर्शनचक्र उत्पन्न हुआ। उसने तीनों खण्ड के लगभग सभी राजाओं को जीत लिया था, परन्तु अभी सिंहरथ राजा को जीतना शेष था। कुमार वसुदेव ने युक्तिपूर्वक उस सिंहरथ राजा को जीत लिया और बन्दी बनाकर अपने सेवक कंस द्वारा राजा जरासंध को सौंप दिया। इससे प्रसन्न होकर जरासंध ने अपनी जीवयशा नामक पुत्री तथा आधा राज्य वसुदेव को देना चाहा; परन्तु वसुदेव ने स्वयं वह न लेकर कंस को दिलवाया।

राज्य पाकर कंस ने जब यह जाना कि वह स्वयं मथुरा का राजकुमार है और पिता उग्रसेन ने बचपन से ही उसका परित्याग कर दिया था। तब उसके पूर्वभव के वैर के संस्कार जाग उठे; उसने क्रोधपूर्वक पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया और मथुरा के राज्य

पर अधिकार कर लिया। (पूर्व वसिष्ठ मुनि के भव में कंस के जीव ने जो पापनिदान बंध किया था, उसका यह फल आया।) पश्चात् राजा कंस ने अपने उपकारी वसुदेव को मथुरा बुलाकर उनका सम्मान किया और अपनी बहिन देवकी का विवाह उनसे कर दिया।

एकबार राजा कंस के महल में अतिमुक्तक मुनि (कंस एवं देवकी के भाई) आहार लेने आये; तब कंस की रानी जीवयशा ने उन मुनि की तथा उनकी बहिन देवकी की हँसी उड़ाकर अनादर किया। इससे क्रोधावेश में वे मुनि वचनगुप्ति भूल गये और उनसे भविष्यवाणी हो गई कि हे जीवयशा ! तू अभिमान के कारण जिसकी हँसी उड़ा रही है, उस देवकी का पुत्र ही तेरे पति कंस का तथा तेरे पिता जरासंध का घात करेगा। मुनि द्वारा की गई भविष्यवाणी का जब राजा कंस को पता चला, तब वह भयभीत हो गया और 'देवकी बहिन के पुत्रों को जन्मते ही मार डालना' – ऐसे दुष्ट आशय से उसने बहिन देवकी को अपने घर ही रखने अर्थात् भानजे का जन्म अपने ही घर में होने का वचन वसुदेव से ले लिया।

अभी तक देवकी को किसी सन्तान की प्राप्ति नहीं हुई थी। उन्हीं दिनों वे ही अतिमुक्तक मुनि पुन: मथुरानगरी में पधारे। देवकी ने उनसे विनयपूर्वक पूछा – हे स्वामी ! हमें दीक्षा का अवसर कब प्राप्त होगा ?

मुनिराज ने कहा – बहिन ! तुझे पुत्रप्राप्ति की इच्छा है, फिर भी तू मायाचार से दीक्षा की बात किसलिये पूछती है ? सुन, तुझे अनेक उत्तम पुत्र होंगे; उनमें से छह पुत्रों का तो अन्य स्थान पर लालन-पालन होगा और वे बड़े होकर दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। सातवाँ पुत्र अर्धचक्रवर्ती – वासुदेव होकर पृथ्वी का राज्य करेगा। यह सुनकर देवकी का मन बहुत सन्तुष्ट हुआ।

श्रीकृष्ण के तद्भव मोक्षगामी छह भाई –

तत्पश्चात् देवकी के तीन बार युगल-पुत्र (**नृपदत्त–देवपाल, अनीकदत्त–अनीकपाल, शत्रुघ्न–जितशत्रु**) हुए। पुण्यप्रभाव से उन छहों चरमशरीर पुत्रों की एक देव ने सेठ सुदृष्टि की पत्नि अलका के पास पहुँचा दिया और उनके स्थान पर दूसरे मृतपुत्र रख दिये। कंस समझा कि देवकी के पुत्र मरे हुए ही अवतरित हुए हैं, तथापि दुष्टभाव के कारण उसने उन नवजात मृत शिशुओं को पत्थर पर पछाड़कर उनका मस्तक फोड़ दिया। **रे संसार ! देखो तो सही, वैरभाव की पराकाष्ठा ! अपनी ही बहिन के पुत्रों को मरे हुए जानकर भी उन्हें कितनी क्रूरता से पत्थर पर पछाड़ा; परन्तु जिनका पुण्य जीवित हो, उन्हें कौन मार सकता है ?**

उन छह पुत्रों के पश्चात् देवकी को सातवें पुत्र का गर्भधारण हुआ। इस बार निर्नामिक मुनि का जीव जो भोगों का पापनिदान करके स्वर्ग में गया था, वह देवकी के गर्भ में आया और **देवकी ने सातवें महीने में पुत्र को जन्म दिया – वह थे श्रीकृष्ण वासुदेव।** (इसप्रकार पूर्वभव के शंख तथा निर्नामिक – दोनों मुनि यहाँ बलदेव एवं वासुदेव के रूप में अवतरित हुए।)

मथुरा में श्रीकृष्ण का जन्म होते ही उनके पिता वसुदेव तथा ज्येष्ठभ्राता (रोहिणी के पुत्र) बलभद्र उन्हें गुप्तरूप से गोकुल में नन्दगोप के घर ले गये। मार्ग के अँधेरे में श्रीकृष्ण के पुण्यप्रभाव से एक देव ने दीपक द्वारा मार्गदर्शन किया, नगर के द्वार अपने आप खुल गये और यमुना नदी का प्रवाह भी अपने आप थम गया। नदी ने दो भागों में विभाजित होकर उस पार जाने का मार्ग बना दिया। अहा ! पुण्यप्रभाव क्या-क्या नहीं करता ? (वह संसार की तो सब सामग्री देता है, परन्तु केवल एक मोक्ष प्राप्त नहीं करा सकता; इसलिए मोक्षार्थी जीव उस पुण्य की शरण नहीं लेते।)

श्रीकृष्ण को लेकर जब वसुदेव और बलभद्र गोकुल जा रहे थे, तब नन्दगोप एक मृतपुत्री को लेकर मार्ग में आते हुए मिले। बलभद्र ने बालकृष्ण को उन्हें सौंप दिया और मृतपुत्री[१] को लेकर ऐसा प्रचारित किया कि देवकी ने मृतपुत्री को जन्म दिया है।

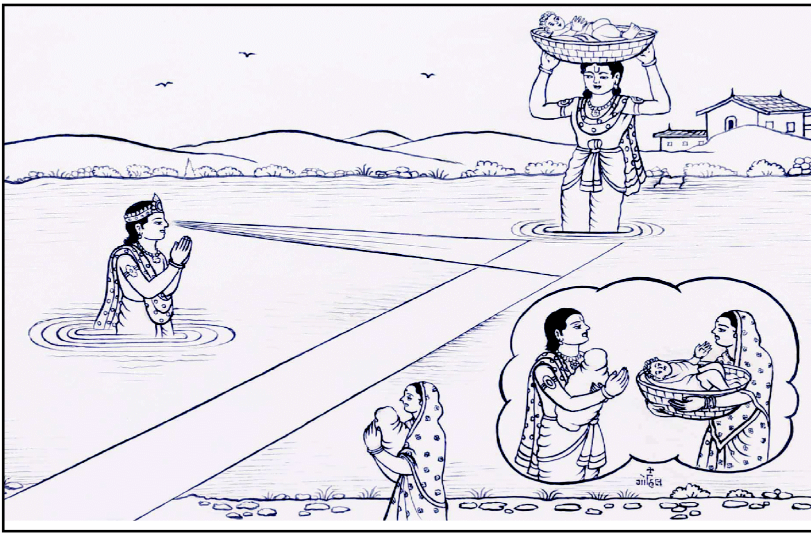

इसप्रकार राजा कंस को श्रीकृष्ण के अवतार की खबर ही नहीं मिली। इधर नन्दगोप की पत्नी यशोदा अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनका लालन-पालन करने लगी। कृष्ण ज्यों-ज्यों बड़े हो रहे थे, त्यों-त्यों मथुरा में उपद्रव बढ़ रहे थे। इसी से अनुमान लगाकर ज्योतिषियों ने राजा कंस को कहा कि – 'आपका महान शत्रु कहीं उत्पन्न हो चुका है।'

यह सुनकर कंस चिन्ता में पड़ गया; उसने शत्रु को ढूँढ़ने और मारने के अनेक उपाय किये, पूर्वभव के मित्र हलके देवों की भी सहायता ली, परन्तु श्रीकृष्ण के पुण्ययोग से उनका कोई कुछ नहीं कर सका, उलटे उनका प्रभाव बढ़ने लगा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि धर्मात्माओं

१. हरिवंश पुराण में जीवित पुत्री की बात आती है।

के पुण्य के समक्ष देवों की शक्ति भी निष्क्रिय हो जाती है और देव भी उनके सहायक हो जाते हैं। अन्त में एक मल्लयुद्ध में छोटे-से श्रीकृष्ण ने बड़े विशाल कंस मामा का संहार कर दिया; उनके पिता राजा उग्रसेन को तथा पद्मावती रानी (अपने नाना-नानी) को कारागृह से मुक्त करके उन्हें मथुरा का राज्य सौंप दिया और श्रीकृष्ण तथा बलभद्र आदि सबने परिवारसहित आनन्दपूर्वक अपनी राजधानी शौरीपुर में प्रवेश किया। उनके आगमन से महाराजा समुद्रविजय आदि सब अतिहर्षित हुए।

अरेरे ! कंस श्रीकृष्ण को तो मार नहीं पाया, पर मारने का भाव करके स्वयं प्रतिक्षण तो भावमरण करता ही रहा और अंत में द्रव्यमरण करके नरकादि गति को प्राप्त हुआ। अत: हे भव्य ! ''जीव कभी मरता ही नहीं है'' ऐसा निर्णय कर मरणभय से मुक्त हो, ताकि सदा के लिए पर्यायमरण से भी मुक्ति मिले।

अब इधर, कंस की मृत्यु के पश्चात् उसकी रानी जीवयशा राजगृही में अपने पिता जरासंध के पास गई और कंस के मरण की बात सुनायी। यह सुनकर राजा जरासंध श्रीकृष्ण आदि समस्त यादवों पर बड़ा क्रोधित हुआ और उन्हें जीतने के लिये अपने पुत्रों को भेजा। सैकड़ों बार युद्ध हुआ। अन्त में, महाराजा समुद्रविजय आदि यादवों ने विचारा कि 'राजा जरासंध महा बलवान है, वह यहाँ शान्ति से नहीं रहने देगा। श्रीकृष्ण अभी छोटे हैं' – ऐसा सोचकर वे शौरीपुर-मथुरा को छोड़कर सौराष्ट्र देश में आकर समुद्र तट पर निवास करने लगे।

(हरिवंशपुराण में ऐसा उल्लेख आता है कि – 'नेमिनाथ का जन्म शौरीपुर में होने के पश्चात् यादव सौराष्ट्र में आये'; परन्तु तीर्थंकर का जन्म होने के पश्चात् किसी के भय से राज्य छोड़कर भागना पड़े – यह बात असंभव है। तीर्थंकर के प्रभाव से तो शत्रु भी आश्रित हो जाते हैं, इसलिए नेमिनाथ तीर्थंकर का जन्म द्वारिका नगरी में होना ही उचित प्रतीत होता है।)

द्वारिका नगरी की रचना और नेमिनाथ का अवतार

यादव जब सौराष्ट्र में समुद्र किनारे रहने आये, तब श्रीकृष्ण एवं भावी तीर्थंकर नेमिनाथ के पुण्यप्रताप से कुबेरदेव ने समुद्र के बीचों-बीच बारह योजन की अतिसुन्दर द्वारिकापुरी नगरी की रचना की। जहाँ तीर्थंकर का अवतार होना है और जिसकी रचना देवों ने की है उस नगरी की शोभा का क्या कहना ? महाराजा समुद्रविजय, नारायण कृष्ण, बलभद्र तथा समस्त यादवों ने उस नगरी में मंगल प्रवेश किया और सुखपूर्वक रहने लगे। उस द्वारिकापुरी के बीच रत्नजड़ित एक हजार शिखरों से शोभायमान भव्य जिनमन्दिर था; उसमें सर्वनगरजन अरिहन्तदेव के दर्शन-पूजन एवं धर्मसाधन करते थे। वह नगरी इन्द्रपुरी के समान सुशोभित थी। अभी तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म नहीं हुआ है।

कुछ समय उपरान्त एक आश्चर्यकारी घटना होती है – द्वारिकापुरी नगरी में प्रतिदिन करोड़ों रत्नों की वृष्टि होने लगी और स्वर्गलोक की ५६ कुमारी देवियाँ द्वारिका में आकर महारानी शिवादेवी की सेवा करने लगीं।

हे पाठको ! इन सब उत्तम चिह्नों से तुम्हें जानकर आनन्द होगा कि अपने सौराष्ट्र देश में एक तीर्थंकर के आगमन की तैयारी हो रही है। अपने चरित्र नायक भगवान नेमिनाथ की, जो कि अहमिन्द्र पर्याय में

विराजते हैं। आयु जब छह मास शेष रही, तब यह मांगलिक घटनायें हुईं। महारानी शिवादेवी के आनन्द का पार नहीं है; उन्हें जैनधर्म की प्रभावना करने तथा सर्वजीवों की दया पालने के उत्तम भाव जाग रहे हैं और विशुद्धि बढ़ती जा रही है। छह मास पश्चात् कार्तिक शुक्ला षष्ठी के मंगल दिवस की पिछली रात्रि में महारानी शिवादेवी ने सिंह, गज, सूर्य, चन्द्र, रंगीन रत्नों की राशि आदि सोलह उत्तम स्वप्न देखे। ठीक उसीसमय स्वर्गलोक से बाईसवें तीर्थंकर का जीव उनकी कुक्षि में अवतरित हुआ। शिवादेवी माता 'रत्नकुक्षिधारिणी' बनीं। धन्य हुई शिवादेवी और धन्य हुआ सौराष्ट्र, माताजी ने राजसभा में जाकर महाराजा समुद्रविजय से स्वप्नों की बात कही –

तब महाराजा समुद्रविजय उनका फल बताते हुए कहने लगे – "हे देवी ! यह मंगलस्वप्न ऐसा सूचित करते हैं कि बाईसवें तीर्थंकर का जीव तुम्हारी कोख में अवतरित हो चुका है।" अहा, मैं तीर्थंकर की माता.... ऐसा जानकर महारानी शिवादेवी को ऐसा हर्ष हुआ, मानों तीर्थंकर उसीसमय उनकी गोद में खेल रहे हों ! उसीसमय स्वर्गपुरी से इन्द्र-इन्द्राणी ने द्वारिकापुरी आकर तीर्थंकर के माता-पिता का सम्मान किया और इसप्रकार गर्भकल्याणक का मंगल महोत्सव करके तीर्थंकर-आत्मा की अपार महिमा जगत में प्रसिद्ध की।

इन्द्र की आज्ञा से भवनवासी देवियाँ जिनमाता की सेवा करती थीं। विविध प्रकार की चर्चा द्वारा उन्हें प्रसन्न रखती थीं और बाल-तीर्थंकर के जन्म की प्रतीक्षा करती थीं। नौ मास आनन्दपूर्वक बीत गये। श्रावण शुक्ला षष्ठी के दिन द्वारिकापुरी में बाईसवें तीर्थंकर का जन्म हुआ।

अहा, द्वारिका आनन्दमय प्रकाश से जगमगा उठी ! प्रभु के प्रताप से स्वर्गलोक के बाजे अपने आप बज उठे, इन्द्रों के आसन भी डोल उठे; देवलोक में खबर फैल गई कि द्वारिकानगरी में भरतक्षेत्र के होनहार

बाइसवें तीर्थंकर का अवतार हुआ है। इन्द्र तुरन्त प्रभु का जन्मोत्सव मनाने हेतु देवों सहित द्वारिका में आ पहुँचे। समुद्र के बीच मानों नूतन इन्द्रलोक की रचना हो गई ! अद्भुत ऐरावत हाथी पर उससे भी अद्भुत बाल-तीर्थंकर को विराजमान करके उनकी शोभायात्रा को इन्द्र जम्बूद्वीप के सुमेरु पर्वत पर ले गये। वहाँ करोड़ों दैवी वाद्यों के स्वर में इन्द्र ने बालक नेमिकुँवर का अभिषेक किया। कुँवर के दिव्यरूप को एक हजार नेत्रों से निहारने पर भी इन्द्र को मानों तृप्ति नहीं हो रही थी ! वह हजार हाथ उछाल-उछालकर वह इन्द्राणी सहित भक्ति से नाच रहा था।

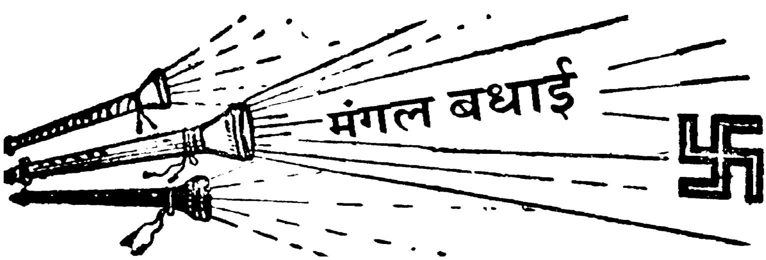

१००८ कलशों से अभिषेक के पश्चात् इन्द्र ने १००८ नामों द्वारा बाल-तीर्थंकर की स्तुति की और यह प्रभु धर्मरूपी रथ के चक्र की 'नेमि' (धुरी) समान हैं – ऐसा समझकर उनका नाम 'नेमिनाथ' रखा। उन दिगम्बर बालकुँवर को इन्द्राणी ने दिव्यवस्त्रों से सजाया, तिलक किया और सम्यक्त्व से स्वयं अलंकृत कुमार का दिव्य अलंकारों से शृंगार किया; साथ ही अतिशय पुण्यों द्वारा उसने अपने आत्मा को भी अलंकृत किया। उन बाल-तीर्थंकर को गोद में लेते हुए उसे कोई अद्भुत रोमांच हुआ। स्वर्गलोक की देवियों को पुत्र नहीं होता – यह बात इन्द्राणी हर्षातिरेक में भूल गई और मानों अपना ही पुत्र है – इसप्रकार प्रभु से स्नेहालिंगन करने लगी। बालप्रभु को अपनी गोद में उठा-उठाकर वह परमतृप्ति का अनुभव करने लगी –

'अहा ! **तीर्थंकर परमात्मा तो मेरी गोद में विराजते हैं तो अब मुझे मोक्ष प्राप्त करने में कितनी देर** ?'

मेरु पर जन्माभिषेक करके इन्द्र बाल-तीर्थंकर की शोभायात्रा के साथ द्वारिकापुरी आये और पिता समुद्रविजय तथा माता शिवादेवी तथा

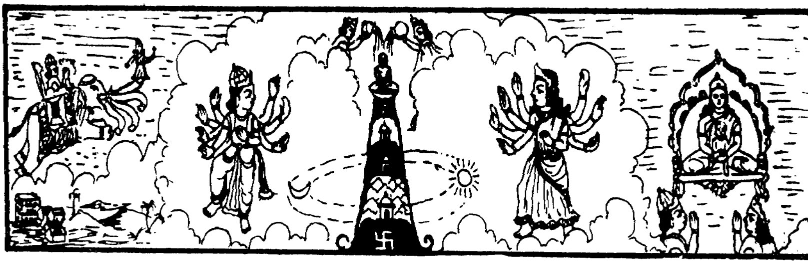

नारायण-बलभद्र के सन्मुख आनन्दमय नृत्य एवं नाटक करके पुन: कुँवर के जन्म का उत्सव किया। अपने कुल में बाल-तीर्थंकर का अवतार होने से श्रीकृष्ण के हर्ष का भी पार नहीं था; वे भी इन्द्र के साथ नृत्य करके अपना आनन्द व्यक्त करने लगे। 'अहा ! मैं तीर्थंकर का भाई, तीर्थंकर मेरे भाई; वे इसी भव में मोक्ष जायेंगे और मैं भी भविष्य में उन्हीं जैसा तीर्थंकर होकर मोक्ष प्राप्त करूँगा।' वाह, अपने परिवार में तीर्थंकर को देखकर भव्यात्माओं को जो आनन्द होता है, उसका क्या कहना! 'अहा, हम तीर्थंकर के परिवार के हुए, हम मोक्षगामी हुए, सिद्धों के साधर्मी हुए।'

एक ओर स्वर्ग का इन्द्र 'हरि' तथा दूसरी और द्वारकाधीश 'हरि' – दोनों हरि हर्ष से नाच रहे थे। द्वारिका नगरी में सर्वत्र आनन्द-मंगल छा गया। मात्र द्वारिका में ही नहीं, सारे सौराष्ट्र में और भारतभर में किसी अनुपम शान्ति एवं हर्षोल्लास का वातावरण था। अरे, कुँवर के जन्म के प्रताप से नारकी जीवों ने भी क्षणभर दु:ख से छुटकारा पाकर शान्ति का अनुभव किया। तीर्थंकर के अवतार का क्या कहना ? वह तो तीन लोक के जीवों को कल्याणकारी हैं।

इक्कीसवें नमिनाथ तीर्थंकर का शासन पाँच लाख वर्ष चला। तत्पश्चात् बाईसवें नेमिनाथ तीर्थंकर का अवतार हुआ। उनकी आयु २,००० वर्ष तथा शरीर की ऊँचाई दस धनुष (३० मीटर) थी। बाल-तीर्थंकर नेमिकुमार आत्मिकसुख के साथ-साथ दैवी सुख का उपभोग करते हुए बढ़ रहे थे। बचपन से ही उनका अलौकिक जीवन देखकर लोग कह उठते कि इन बालमहात्मा का जीवन जगत से भिन्न प्रकार का है; ज्ञानचेतना से सुशोभित उनका अन्तर्मुखी जीवन धर्मसाधना की अचिन्त्य महिमा को प्रकट करता था।

आपका जीवन सच्चा, ज्ञान चेतनमय जीता।
सुखमय जीवन प्रारम्भ हुआ...सुख से नहिं रीता।
सोते या जगते, उठते या बैठते हृदय में रहे प्रभु ! तेरी रटन...।

वाह, धन्य प्रभु का जीवन ! धन्य अवतार ! अहो, ज्ञानचेतना से सुशोभित प्रभु का जीवन शान्त एवं गम्भीर है, जो अन्य जीवों को भी चैतन्यभावों की भावनायें जागृत करता है।

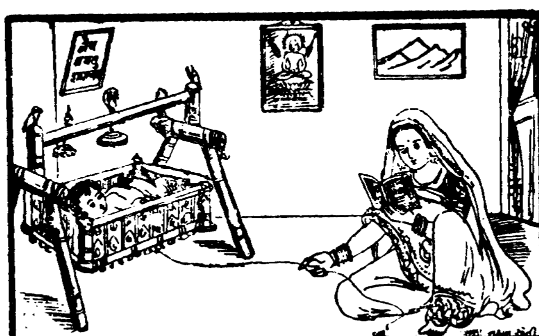

माता शिवादेवी अपने लाड़ले पुत्र को लाड़ करती थी उसकी तो बात ही क्या ? छोटे नेमिकुँवर को पालने में झुलाते हुए जो अद्भुत लोरी वे गाती थी, वह सुनो –

तुम्हीं शुद्ध हो, तुम्हीं बुद्ध हो, तुम निर्विकल्प उदासी...
नेमिकुँवर झूले रे चैतन्य पालने....
चेतनराजा, झूलो रे चैतन्य पालने....

तुम हो चेतन साधक, निज मुक्ति के आराधक....
झूलो-झूलो तुम तो आनन्द पालने....
नेमिकुँवर झूलो रे चैतन्य पालने....
तुम स्वानुभूति प्रकाशी, अरु आतमगुण-विलासी...
वीर मेरे अद्भुत तुम्हारा ज्ञान है,
नेमिकुँवर झूलो रे चैतन्य पालने....
मेरा पुत्र बड़ा जब होगा, तब मुनि बनकर विचरेगा,
भव्यजीवों का होगा बेड़ा पार....
नेमिकुँवर झूलो रे चैतन्य पालने....
तुम तीर्थंकर पद पाकर, जिनशासन की शोभा कर,
सिद्धि पाकर....परम पद में झूलना, नेमिकुँवर माता झुलावे पालने....

'अहा ! यह तो मेरा छोटा भाई और वह भी भगवान !' – ऐसा कहते हुए बलभद्र तो अत्यन्त स्नेह से नेमिकुँवर को गोद में लिये फिरते और खिलाते थे। भरतक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ और भावी तीर्थंकर महात्मा श्रीकृष्ण – ऐसे दो पुराणपुरुषों के पुण्यप्रताप से देवों द्वारा निर्मित द्वारिका नगरी की शोभा अद्भुत थी। मोक्षगामी चरमशरीरी अनेक धर्मात्मा जीव वहाँ निवास करते थे। सौराष्ट्र देश का विशाल समुद्र देखकर प्रभु नेमिकुमार अपने अन्तर में महान चैतन्य-रत्नाकर का ध्यान धरते थे। उससमय समुद्र की अपेक्षा अधिक गम्भीर उनकी मुद्रा पर शान्तरस का समुद्र उल्लसित होता था।

एक ओर नेमि तीर्थंकर के प्रताप से सम्यक्त्वादि रत्नों की उत्पत्ति होती थी, तो दूसरी ओर वहाँ के समुद्र से भी मोती और रत्न निकलते थे। नवनिर्मित द्वारिका नगरी का दिव्यवैभव देखकर तथा वहाँ विराजमान नेमि तीर्थंकर के दर्शन करके देश-देशान्तर से आनेवाले यात्रीगण आश्चर्यमुग्ध होते और अपने को धन्य मानते थे। सच ही है कि प्रत्यक्ष तीर्थंकर के दर्शन से महान सौभाग्य जगत में और क्या होगा ?

राजा जरासंध से युद्ध में जीतकर बने श्रीकृष्ण अर्धचक्री

एकबार मगध देश के कुछ व्यापारी समुद्रमार्ग से व्यापार करने निकले। वे 'पुण्योदय से मार्ग भूलकर' नवनिर्मित द्वारिकापुरी में आ पहुँचे। 'मार्ग भूले हुए तथापि पुण्योदय !' जी हाँ; क्योंकि मार्ग भूलने से उन्हें बाईसवें तीर्थंकर की जन्मभूमि द्वारिका की तीर्थयात्रा हुई तथा बाल-तीर्थंकर नेमिकुमार के दर्शन हुए। द्वारिकानगरी की दिव्यशोभा देखकर तथा नेमिप्रभु के दर्शन करके वे व्यापारी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने समुद्र के बीच कभी ऐसी नगरी नहीं देखी थी और व्यापार में भी उन्हें खूब लाभ हुआ। इसप्रकार धर्म और धन दोनों का लाभ प्राप्त हुआ, यहाँ से उत्तम रत्न लेकर वे राजगृही पहुँचे।

राजगृही आकर उन्होंने अर्धचक्रवर्ती महाराजा जरासंध को वे उत्तम रत्न भेंट किये। ऐसे उत्तम रत्न देखकर राजा आनन्दित हुए और पूछा – हे महाजनो ! तुम इतने सुन्दर रत्न कहाँ से लाये ? यह रत्न तो मानों नेत्र खोल-मींचकर कुछ कह रहे हों – ऐसे जगमगा रहे हैं।

महाजनों ने कहा – हे महाराज ! हमने एक अद्भुत कौतुक देखा है; ऐसा आश्चर्य पहले हमने कभी नहीं देखा था। सौराष्ट्र देश के समीप समुद्र में हमने द्वारिकापुरी नाम की नगरी देखी, मानों पाताल लोक से निकली हो, सुवर्ण के गढ़युक्त उस नगरी की शोभा अद्भुत थी और उससे भी महान आनन्द की बात यह है कि भरतक्षेत्र के बाईसवें तीर्थंकर नेमिकुमार उस नगरी में विराज रहे हैं, हमने उनके भी दर्शन किये। अहा, धन्य है.... उन बाल-तीर्थंकर की गम्भीरता ! कैसा वैराग्य ! और कितनी प्रसन्न शान्त मुद्रा ! उन तीर्थंकर प्रभु के साक्षात् दर्शन से हमारा जन्म कृतार्थ हुआ। उस द्वारिकापुरी में प्रभु नेमिकुमार के जन्म से पूर्व देवों ने करोड़ों रत्नों की वर्षा की थी, वहाँ जगह-जगह विभिन्न प्रकार के उत्तम रत्न दिखाई देते हैं, उन्हीं में से कुछ रत्न हम लाये हैं और आपको भेंट दिये हैं। श्रीकृष्ण-बलभद्र आदि यादव वहाँ राज्य करते हैं।

यादवों का नाम और उनके वैभव की बात सुनते ही राजा जरासंध क्रोध से आगबबूला हो गया; उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई। 'अरे, वे यादव तो मेरे भय से अग्नि में जल मरे हैं – ऐसा मैं मानता था। उसके बदले वे तो जीवित हैं और महान विभूतिसहित द्वारिका में राज्य कर रहे हैं। अब मैं उनका विनाश करके द्वारिका को जीत लूँगा।' – ऐसा विचार करके उस अन्धबुद्धि ने विशाल सेना एवं सुदर्शनचक्रसहित युद्ध के लिये द्वारिका की ओर प्रयाण किया। **अरे रे ! तीर्थंकर के जन्म का आनन्द मनाने के बदले वह दुर्बुद्धि अपने सर्वनाश के मार्ग पर चल दिया।**

इधर नारदजी ने श्रीकृष्ण को समाचार दिये कि शत्रुराजा जरासंध लड़ने के लिये आ रहा है। समाचार मिलने पर शूरवीर श्रीकृष्ण को किंचित् भी भय या आकुलता नहीं हुई; वे नेमिकुमार के पास आये और विनयपूर्वक कहा – हे देव ! राजा जरासंध युद्ध के लिये आ रहा है; आपके प्रताप से मैं उसे शीघ्र ही जीत लूँगा। मैं उसे जीतकर आऊँ, तबतक आप इस द्वारिकापुरी नगरी का राज्य सँभालकर इसकी रक्षा करना।

(पाठकों को यहाँ यह स्मरण होना चाहिए कि जरासंध अर्धचक्री प्रतिनारायण था और राजगृही का राजा था। अन्धकवृष्टि शौरीपुर के राजा थे, जिन्होंने अपने जेष्ठ्य पुत्र समुद्रविजय को राज्य सौंप कर दीक्षा ले ली थी। समुद्रविजय के चचेरे भाई उग्रसेन थे जो मथुरा के राजा थे। जो कंस के पिता एवं श्रीकृष्ण के नाना थे। जिन्हें उनके ही पुत्र कंस ने पूर्व के बैर के कारण कारागृह में डाल रखा था। कंस जरासंध का दामाद था, अत: कंस के मरने के बाद जरासंध प्रतिनारायण के अत्याचार से बचने हेतु समुद्रविजय, श्रीकृष्ण, बलभद्र आदि सभी द्वारिकापुरी नगरी में जाकर निवास करने लगे, जिसकी देवों ने बीच समुद्र में रचना की थी और जिसके राजा नारायण श्रीकृष्ण थे। इसीलिए जरासंध द्वारा चढ़ाई करने के समय श्रीकृष्ण को द्वारिकापुरी नगरी का राज्य रक्षा हेतु नेमिकुमार

को सौंप कर जाना पड़ा, क्योंकि जहाँ तीर्थंकर विराजते हों, वहाँ बैरभाव नहीं होते, अत: वहाँ युद्ध नहीं हो सकता था।)

श्रीकृष्ण की बात सुनकर कुमार नेमिनाथ कुछ मुस्कराये; वे जानते थे इस युद्ध में विजय श्रीकृष्ण की ही होना है; इसलिए उन्होंने 'ओम्' ऐसा शब्द कहकर श्रीकृष्ण की बात को स्वीकार किया। जिसप्रकार वाद-विवाद में अनेकान्त वचन से जैनवादी अपनी विजय का निश्चय कर लेता है, उसी प्रकार नेमिकुमार की मन्द मुस्कराहट से तथा 'ओम्' – ऐसे मंगलवचन से श्रीकृष्ण ने अपनी विजय का निश्चय कर लिया।

राजा जरासंध राजगृही से निकलकर विशाल सेनासहित कुरुक्षेत्र आया और दूसरी ओर से श्रीकृष्ण भी विशाल सेनासहित द्वारिका से चलकर कुरुक्षेत्र में आ पहुँचे। (यहाँ एक बात ध्यान रखने योग्य है – तीर्थंकर के समीप युद्धादि महान हिंसा नहीं होती, इसलिये शास्त्रकार युक्तिपूर्वक रणभूमि को द्वारिका से सैकड़ों योजन दूर कुरुक्षेत्र में ले गये हैं और तीर्थंकर नेमिकुमार को युद्धभूमि से दूर रखा है।) कुरुक्षेत्र में महायुद्ध हुआ; उसमें भीष्म, कर्ण, द्रोण, जयद्रथ, अश्वत्थामा, दुर्योधन, दु:शासन आदि योद्धा जरासंध के पक्ष में थे, तो श्रीकृष्ण के पक्ष में पाँच पाण्डव, राजा उग्रसेन, राजा द्रुपद आदि शूरवीर योद्धा थे। महाभयंकर युद्ध में कितने ही मनुष्य मरे, कितने ही हाथी-घोड़े कट गये; जरासंध की सेना श्रीकृष्ण की सेना पर इसप्रकार टूट पड़ी कि सेना में भगदड़ मच गई। यह देखकर श्रीकृष्ण स्वयं जरासंध की सेना पर ऐसे टूट पड़े कि जरासंध की सेना पीछे हटकर भागने लगी। तब जरासंध ने अत्यन्त क्रोधित होकर कृष्ण को मारने के लिये अपना सुदर्शन चक्र फेंका। क्षणभर तो युद्धभूमि में हाहाकार मच गया, क्योंकि चक्र का कोई प्रतिकार नहीं था, परन्तु महाप्रतापी श्रीकृष्ण के निकट आते ही उनके पुण्य प्रताप से वह चक्र शान्त हो गया और श्रीकृष्ण की तीन प्रदक्षिणा करके उनके हाथ में आ गया। दूसरे ही क्षण उसी चक्र द्वारा श्रीकृष्ण ने जरासंध का वक्षस्थल छेद दिया।

इसप्रकार प्रतिवासुदेव का नाश करके श्रीकृष्ण-वासुदेव त्रिखण्डाधिपति चक्रवर्ती के रूप में प्रसिद्ध हुए। देवों ने भी उनके पुण्य की प्रशंसा की और हजारों देव उनकी सेवा करने लगे। त्रिखण्ड की दिग्विजय करके श्रीकृष्ण ने चक्रसहित द्वारिका में प्रवेश किया, तब देवों ने बलभद्रसहित उनका राज्याभिषेक किया। १६,००० राजा उनके आज्ञाकारी थे।

अर्धचक्री श्रीकृष्ण और तीर्थंकर कुमार श्री नेमिनाथ

महाराजा श्रीकृष्ण की राजसभा में श्री नेमिकुमार का बड़ा सम्मान था। एकबार भव्य राजसभा में श्री नेमिकुमार पधारे। समस्त सभाजनों ने खड़े होकर उन्हें आदरपूर्वक नमस्कार किया। महाराजा श्रीकृष्ण ने भी आगे बढ़कर श्री नेमिकुमार का हाथ पकड़कर उन्हें अपने साथ सिंहासन पर बिठाया। एक राजचक्री और दूसरे धर्मचक्री – उनसे राजसभा सुशोभित हो उठी। अहा, जहाँ एक वर्तमान तीर्थंकर और दूसरे भावी तीर्थंकर – ऐसे दो तीर्थंकर महात्मा एक साथ विराजते हों, उस सभा की अद्भुत शोभा का क्या कहना।

राजसभा में अनेक प्रकार की चर्चा होती थी; उसमें अचानक ऐसी चर्चा निकली कि इस समय सभा में सर्वाधिक बलवान कौन ? किसी ने कहा भीम सबसे बलवान है; किसी ने कहा – अर्जुन; किसी ने युधिष्ठिर का नाम लिया; कई लोगों ने श्रीकृष्ण के बल की प्रशंसा की कि उनमें हजार सिंहों का बल है; कई लोगों ने बलभद्र के बल की प्रशंसा की। अन्त में बलभद्र ने हँसते-हँसते नेमिनाथ की ओर दृष्टि करके कहा – 'सभाजनो ! इस समय श्री नेमिकुमार यहाँ विराज रहे हैं, वे ही सबसे बलवान हैं; उनके अचिन्त्य बल की तुलना किसी से नहीं हो सकती; वे इन्द्र से भी अधिक बलवान हैं। वे चाहें तो अपनी अँगुली से बात ही बात में मेरुपर्वत को तथा सारी दुनिया को उलट-पुलटकर सकते हैं।'

श्रीकृष्ण को अपने बल का गौरव था; उनसे यह बात सहन नहीं हुई; उन्होंने शक्ति परीक्षण हेतु नेमिकुमार को मल्लयुद्ध का निमन्त्रण दिया। परन्तु – 'आप तो मेरे ज्येष्ठ भ्राता हैं, आपके साथ मल्लयुद्ध शोभा नहीं देता।' – ऐसा कहकर नेमिकुमार ने इन्कार कर दिया। अन्त में, अन्य प्रकार से नेमि-कृष्ण दोनों के बल की परीक्षा हुई और नेमिकुमार के बल की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध हुई। श्रीकृष्ण सहित सारी सभा ने श्री नेमिकुमार की प्रशंसा करके अभिनन्दन किया। अरे, उससमय स्वयं इन्द्र ने आकर नेमिकुमार की स्तुति की। नेमिकुमार को यद्यपि मान का किंचित् विकल्प आ गया, परन्तु शरीर से भिन्न चैतन्य के अनन्तबल की प्रतीति होने से उन्होंने अपनी आत्मचेतना में मानकषाय को प्रविष्ट नहीं होने दिया, भेदज्ञान के बल से उसे चेतना से बाहर ही रखा। शरीरबल का मद उनको नहीं था। अशरीरी एवं निर्मान ऐसे परमात्मतत्त्व की साधना उनको निरन्तर चलती ही रहती थी। वास्तव में वे एक 'राजयोगी' थे और उन्हें अल्पकाल में 'योगिराज' बनना था। उनका जीवन जगत के सामान्य जीवों की अपेक्षा विशिष्ट था। श्रीकृष्ण भी उनका आदर-सत्कार करते थे। इस भरतक्षेत्र के एक भावी तीर्थंकर वर्तमान तीर्थंकर की सेवा करते थे।

राजसभा की उपर्युक्त घटना के पश्चात् श्रीकृष्ण के मन में चिन्ता रहने लगी कि नेमिकुमार कदाचित् मेरा राज्य ले लेंगे। अरे रे ! वैरागी नेमिकुमार को ऐसे तुच्छ राज्य का कहाँ मोह था ? उन्होंने तो जन्म से ही तीन लोक का राज्य प्राप्त किया था; मेरु पर अभिषेक करके इन्द्र भी उनके सेवक बन गये थे; वे श्रीकृष्ण के इस छोटे से राज्य को क्यों लेते? परन्तु **तीव्र राज्यलिप्सा के कारण श्रीकृष्ण को ऐसा भय हुआ कि कदाचित् नेमिकुमार मेरा राज्य ले लेंगे।** इससे वे ऐसा कोई उपाय विचारने लगे कि 'नेमिकुमार जल्दी दीक्षा ले लें। अरे रे मोह ! एक और ऐसी ही घटना हुई।

एकबार महाराजा श्रीकृष्ण अपनी रानियों सहित सरोवर में क्रीड़ा करने गये थे। श्रीकृष्ण अनुनय-विनयपूर्वक नेमिकुमार को भी वहाँ ले गये। श्रीकृष्ण की रानियाँ अर्थात् नेमिकुमार की भाभियाँ – सत्यभामा, रुक्मणी, जाम्बुवती आदि नेमिकुमार के साथ हास्य-विनोद कर रही थी। जलक्रीड़ा के पश्चात् नेमिकुमार ने सत्यभामा से कहा – 'भाभी, मेरा यह वस्त्र भी धो देना !'

तब सत्यभामा तुनककर बोली – कुँवरजी, तुम मुझसे वस्त्र धोने का आदेश देनेवाले कौन ? मैं क्या तुम्हारी दासी हूँ ? मेरे पति (श्रीकृष्ण) त्रिखण्डाधिपति, नागशैय्या में शयन करनेवाले, दैवी शंख फूँकनेवाले तथा सुदर्शनचक्र चलानेवाले हैं, उनके जैसा एक भी पराक्रम क्या तुमने कभी किया है ?.... वस्त्र धुलवाना हो तो विवाह कर लो न ! इसप्रकार कटाक्षपूर्वक ताना दिया।

सदा गम्भीर और शान्त रहनेवाले नेमिकुमार को भाभी के कटाक्ष वचनों से किंचित् मान का भाव जागृत हो उठा। वे कुछ भी बोले बिना मन्द मुस्कराहट के साथ सीधे राजभवन में गये और वहाँ कृष्ण की नागशैय्या पर चढ़कर क्रीड़ा करने लगे। (नागशैय्या वह कोई नागों (सर्पों)

की नहीं होती, किन्तु देवों द्वारा निर्मित सुन्दर सेज है; उस पर वासुदेव जैसे पुण्यवन्त ही विश्राम करते हैं।) नेमिकुँवर के पुण्य प्रताप से उस नागशैय्या के देव शान्त रहे और उनका सम्मान किया। फिर एक हाथ की अँगुली पर उन्होंने सुदर्शनचक्र घुमाया और दूसरे हाथ में दैवी शंख लेकर उसे नासिका द्वारा जोर से फूँक दिया।

उस शंखध्वनि से द्वारिका में चारों ओर हाहाकार मच गया। हाथी-घोड़े आदि भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। नगर में कोलाहल मच गया कि यह क्या हुआ ? समुद्र में लहरें उछलने लगीं। महाराजा श्रीकृष्ण विचार में पड़ गये कि अरे, मेरे सिवाय दूसरा कौन शूरवीर है, जो यह शंख फूँक रहा है ?

यह सब पराक्रम अपने लघु भ्राता नेमिकुमार का है – ऐसा जब उन्हें ज्ञात हुआ तब वे मन ही मन प्रसन्न हो उठे कि अब नेमिकुमार के मन में कुछ गर्व जागृत हुआ है, इसलिए अब वे विवाह के लिये अवश्य सम्मति देंगे। नेमिकुमार की आयु १००० वर्ष थी, उसमें से अभी ३०० वर्ष हुए थे, तथापि अभी तक वे विवाह के लिए सम्मत नहीं हुए थे। श्रीकृष्ण तुरन्त नेमिकुमार के पास गये और उन्हें समझाकर शान्त किया कि हे देव ! आप तो महान हैं, मुझसे भी अधिक शूरवीर हैं; आपकी वीरता को कौन नहीं जानता? सत्यभामा ने आपको नहीं पहिचाना, इसलिए उसने आपका अनादर किया। प्रभो ! उसके अपराध को क्षमा करो और प्रसन्न होओ।

नेमिकुमार तो मानों कुछ हुआ ही न हो – इसप्रकार मन्द-मन्द मुस्कराते हुए, श्रीकृष्ण के साथ

विनोद करते-करते राजमहल में चले गये। वहाँ जाकर वे आत्मध्यान में बैठ गये और शान्त चैतन्यतत्त्व में उपयोग लगाकर उसकी भावना करने लगे –

मैं क्रोध नहिं, नहिं मान, तैसे लोभ-माया हूँ नहीं।
कर्ता न कारयिता न; अनुमंता भी कर्ता का नहीं।।
निर्ग्रन्थ है, निष्काम है, नि:क्रोध अरु निर्मान है।
नि:शल्य और नीराग, निर्मद, सर्वदोष-विमुक्त है।।
सब जीव में समता मुझे, ना वैर किसी के साथ भी।
वास्तव में आशा छोड़कर, प्राप्ति करूँ मैं समाधि की।।

और सचमुच ऐसी आत्मभावना से उस समय निर्विकल्प होकर प्रभु नेमिकुमार ने क्षणमात्र में सर्व विभाव झरा दिये। वाह, धर्मात्मा की ज्ञानचेतना की शूरवीरता कोई अद्भुत है।

समुद्रविजय के समक्ष नेमिकुमार के विवाह का प्रस्ताव

उपरोक्त घटना से श्रीकृष्ण को ऐसा लगा कि अब दीर्घकाल के पश्चात् नेमिकुमार के चित्त में किंचित् राग जागृत हुआ है; इसलिए महाराजा समुद्रविजय की सम्मतिपूर्वक उन्होंने नेमिकुमार के विवाह का विचार किया और श्रीकृष्ण स्वयं राजकुमारी राजुल की मंगनी करने जूनागढ़ गये। राजा उग्रसेन (यह कंस के पिता नहीं हैं) ने श्रीकृष्ण का भारी स्वागत किया – 'हे स्वामी ! मेरे आँगन में पधारकर आपने मुझे उपकृत किया। कहिये, आपकी क्या आज्ञा है ?'

श्रीकृष्ण ने कहा – हमारे नेमिकुँवरजी जो कि तीर्थंकर होनेवाले हैं एवं सर्वगुणसम्पन्न हैं, उनके लिये आपकी राजकुमारी राजुल सर्वप्रकार से योग्य है; इसलिये आप नेमिकुमार के साथ राजुलमति के विवाह सम्बन्ध की स्वीकृति देकर हमें कृतार्थ करें।

अहा ! राजुलकुमारी को नेमिकुमार जैसा पति मिले इससे अधिक

सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है? 'हमारा अहोभाग्य कि आपने सामने चलकर यह प्रस्ताव रखा।' ऐसा कहकर महाराजा उग्रसेन ने श्रीकृष्ण की बात को सहर्ष स्वीकार किया। राजमती ने जब जाना कि श्री नेमिकुमार मेरे पति होंगे तब उनके हृदय में कोई दिव्यहर्ष की अनुभूति हुई – 'अहा ! एक तीर्थंकर-महात्मा मेरे जीवनसाथी बनेंगे। उन धर्मात्मा के सहवास से मैं धन्य हो जाऊँगी !' आश्चर्य है कि इधर द्वारिका में नेमिकुमार भी राजमती के साथ विवाह के लिये तैयार हो गये। नेमिकुमार राजमती के साथ विवाह करेंगे – यह बात जानकर सम्पूर्ण नगरी में कुतूहल के साथ हर्ष छा गया। राजमाता शिवादेवी भी अत्यन्त हर्षित होकर पुत्रवधु का मुख देखने को आतुर हो गईं। परन्तु **'जो-जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे, अनहोनी कबहूँ नहीं होसी'**....

एक ओर तो नेमि-राजुल के विवाह का अवसर निकट आ रहा था। द्वारिका और जूनागढ़ के प्रजाजन वह आनन्दोत्सव देखने को आतुर थे; जबकि दूसरी ओर श्रीकृष्ण के चित्त में शान्ति नहीं थी, उनका अन्तर एक अव्यक्त भय से अशान्त था; सत्यभामा और राजसभा वाली घटना के पश्चात् उन्हें चिन्ता थी कि कुमार नेमिनाथ मेरी अपेक्षा अधिक बलवान एवं पराक्रमी हैं, वे बात ही बात में मुझे जीत सकते हैं; इसलिए विवाह के पश्चात् कदाचित् वे मुझसे यह राज्य छीन लेंगे तो ?

एकबार अपने मन की यह चिन्ता उन्होंने ज्येष्ठ भ्राता बलदाऊ के निकट प्रकट की, तब गम्भीर बलभद्र ने कहा – हे भाई कृष्ण ! हम जानते हैं कि श्री नेमिकुमार तीर्थंकर होने वाले हैं, जन्मते ही इन्द्रों ने उनकी सेवा की, वह भी हम सबने प्रत्यक्ष देखा है और वंश-परम्परा से तो महाराजा समुद्रविजय के पश्चात् राज्य के अधिकारी वे ही हैं, परन्तु वे अति वैराग्यवान हैं; उन्हें तो पहले से ही राज्य की या भोगों की कोई आकांक्षा नहीं है; इसलिये वे यह राज्य ले लेंगे ऐसा भय रखने का कोई कारण नहीं है। उनके आगमन से तो अपने राज-दरबार की शोभा बढ़ जाती

है। उनका चित्त संसार से इतना उदास है कि वैराग्य का कोई प्रसंग आने पर वे संसार छोड़ देंगे और दीक्षा लेकर मुनि हो जायेंगे।

नेमिकुमार को वैराग्य एवं दीक्षा कल्याणक

बलभद्र की उस बात से श्रीकृष्ण के चित्त में किंचित् शान्ति हुई और वे ऐसा कोई प्रसंग उपस्थित करने की युक्ति सोचने लगे कि जिसे देखकर नेमिकुमार को वैराग्य हो जाये और वे राज्य छोड़कर वन में चले जाएँ। वैराग्य का कौन-सा प्रसंग उपस्थित हुआ ? वह आगे पढ़ेंगे।

दूल्हा नेमिकुमार की बारात ने राजमती को वरने जूनागढ़ की ओर प्रस्थान किया। विभिन्न प्रकार के मंगल वाद्य-स्वरों से सारा वातावरण गूँज उठा। बारात की शोभा अद्भुत थी। श्रीकृष्ण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसका संचालन कर रहे हों; हजारों राजा महाराजा जिसके बराती बने हों, रथ में विराजमान दूल्हा नेमिकुमार की शोभा का तो कहना ही क्या था। दिव्य अलंकारों से तथा प्रसन्नकारी मुद्रा से सुशोभित नयनाभिराम कुमार राजुल के चित्त को आकर्षित कर रहे थे –

नेमिकुँवर की बारात चली राजमती को वरने....
नेमिराजा बने दूल्हाराजा राजमती को वरने....
श्रीकृष्ण-बलभद्र आये, युधिष्ठिर भी साथ में....
बड़े-बड़े राजा आये, नेमिराजा के साथ में....
नेमिकुँवर की बारात चली राजमती को वरने....।
बड़ी सुन्दर है बारात आई, राजुल तो प्रेम से देख रही,
'मेरा प्रीतम....सुन्दर प्रीतम', हृदय में वह हरष रही;
नेमिराजा बने दूल्हाराजा....राजमती को वरने।
नेमिराजा ने राजुल को देखा, मुखड़ा तब तो मुस्कराया था,
रूपसुन्दरी को नजर से देखत, हियरा तो हरख ही गया था;
नेमिकुँवर की बारात चली राजमती को वरने....।

विभिन्न राजमार्गों को दोनों ओर बल्लियाँ बाँध कर, वहाँ से आने वाली सभी जनमेदनी एवं पशुओं को रोका गया है, ताकि बारात आगमन में किसी प्रकार व्यवधान उपस्थित न हो। संध्याकाल की गोधूलि वेला में बारात आनन्दपूर्वक जूनागढ़ के विभिन्न राजमार्गों से निकलती हुई राजमहल की ओर बढ़ रही है। सहेलियाँ विनोद करती हुई राजकुमारी राजुल को अपने साथ राजमहल के झरोखे में ले जाती हैं, जहाँ राजकुमारी राजुल अपने हृदय सम्राट को एकटक निहार रही हैं।

इतने में अचानक राजमार्ग के एक ओर से बकरी, गाय-भैंस आदि पशुओं के करुण क्रन्दन का स्वर नेमिकुमार के कानों में पड़ा, जो मार्ग अवरुद्ध किये जाने कारण एक ओर रुके हुए पशु करुण क्रन्दन कर रहे थे, मानों वे वहाँ से छूटकर शीघ्र ही अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने के लिए व्याकुल हो रहे हों।

उन पशुओं की करुण पुकार सुनकर दूल्हा नेमिकुमार चौंक उठे ! रथ को वहीं रोककर पूछा – 'अरे सारथी ! आनन्द के वातावरण में यह करुण क्रन्दन कैसा ? यहाँ इन पशुओं को क्यों रोक रखा है ?'

सारथी ने बताया कि – प्रभो ! आपकी बारात का मार्ग अवरुद्ध नहीं हो, अत: महाराजा श्रीकृष्ण की आज्ञा से[१] इन पशुओं का मार्ग अवरुद्ध किया गया है, ताकि आपकी बारात में अन्तराय न हो।

---

१. पुराण में ऐसा कथन भी आता है कि बारात में मांसाहारी राजाओं के लिए ये पशु रोके गये हैं और श्रीकृष्ण ने उन्हें वैराग्य दिलाने हेतु तथा अपना राज्य बचाने हेतु यह प्रपंच रचा था। 'जरा हम गम्भीरता से विचार करें कि क्या तीर्थंकर की बारात में मांसाहारी राजा हो सकते हैं ? अरे, आज पंचमकाल के सामान्य श्रावक की बारात में भी कोई मांसाहारी राजा नहीं जाता और जाता भी है तो उसके मांसाहार की व्यवस्था नहीं होती। फिर तीर्थंकर की बारात में यह कैसे सम्भव है ? दूसरी विचारणीय बात यह है कि तीर्थंकर नेमिकुमार को वैराग्य हेतु निमित्त जुटाने के लिए श्रीकृष्ण भी इतना नीचे कैसे गिर सकते हैं।

नेमिकुमार एकदम गंभीर हो गये। अरे मैं कितना स्वार्थी हूँ कि मेरा मार्ग अवरुद्ध नहीं हो, अत: इन मूक पशुओं का मार्ग अवरुद्ध कर दिया। अरे, **धिक्कार है इस संसार को ! बस होओ इस संसार से.... मुझे नहीं करना है विवाह।** (इसका चित्र आवरण पृष्ठ पर देखें)

वैरागी कुमार ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय मतिज्ञान की निर्मलता में उन्हें पूर्वभवों का जातिस्मरण हुआ; उसमें चिन्तागति विद्याधर, सुप्रतिष्ठ राजा तथा अहमिन्द्र के भव उन्हें स्पष्ट दृष्टिगोचर हुए। उनकी विशुद्धि एकदम बढ़ने लगी और उन्होंने निश्चय किया कि – **यह असार संसार त्यागकर आज ही मैं जिनदीक्षा ग्रहण करूँगा और अपने परमात्मपद को साधूँगा। उन्होंने उसी समय सारथी को आज्ञा दी, सारथी, रथ को मोड़ो....मुझे न तो विवाह करना है और न संसार में रहना है।** वे मन ही मन भावना भाने लगे, जिसका सार कुछ इसप्रकार है –

मुझे लागे संसार असार,
ऐसे संसार में नहीं जाऊँ....नहीं जाऊँ, नहीं जाऊँ रे
मेरा ज्ञायक पद एक सार
ऐसे ज्ञायक में मैं लीन होऊँ....लीन होऊँ....लीन होऊँ रे
मुझे लागे विभाव असार
ऐसे विभाव से दूर जाऊँ....दूर जाऊँ....दूर जाऊँ रे
मुझे लागे एक सिद्धपद सार,
ऐसे सिद्धपद में शीघ्र जाऊँ....शीघ्र जाऊँ....शीघ्र जाऊँ रे

दूल्हा नेमिकुमार संसार से विरक्त होकर रथ को मोड़कर वन की ओर जा रहे हैं; उन्हें विवाह नहीं करना है – यह समाचार सुनते ही चारों ओर हाहाकार मच गया। महाराजा समुद्रविजय तथा बलभद्र आदि ने उन्हें विवाह करने के लिये तरह-तरह से समझाया। किन्तु वे अपने निर्णय

में अडिग थे। श्रीकृष्ण को भी अपने कृत्य के लिये पश्चाताप हुआ; परन्तु **संसार के पिंजरे से छूटा हुआ सिंह वैराग्य से वन की ओर चलने को तत्पर हुआ वह फिर से संसार के पिंजरे में बन्द होने के लिये क्यों आता ?** श्रीकृष्ण ने तुरन्त उन पशुओं को बन्धन मुक्त करवा दिया; परन्तु आश्चर्य हुआ कि वे जीव दौड़कर वन की ओर भागने के बदले नेमिकुमार के निकट आकर निर्भयता से उनके चरणों में बैठ गये और उनकी वैराग्यपूर्ण शान्तमुद्रा देखने लगे, मानों उनको भी वैराग्य हो गया हो और वे अपनी भाषा में कह रहे हों कि – **'हे प्रभो ! जिसप्रकार हमें भी इस बंधन से छुड़ाया है, उसीप्रकार सदा के लिये जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ाकर हमारा उद्धार करो।'**

अद्भुत था वह दृश्य ! चारों ओर आश्चर्य एवं वैराग्य का वातावरण था। माता शिवादेवी ने जब यह जाना कि पुत्रवधू का मुख देखने की उनकी आशा टूट गई है और पुत्र विवाह के बदले वैराग्य प्राप्त करके वन की ओर प्रयाण कर रहा है, तब उन शूरवीर माता ने धैर्यपूर्वक उस वैराग्य प्रसंग को सह लिया। वे कोई साधारण स्त्री तो थीं नहीं, तीर्थंकर की माता थीं और ३०० वर्ष तक साथ रहकर अपने पुत्र नेमिकुमार के वैराग्यमय जीवन को प्रत्यक्ष देखा था। 'मेरा पुत्र सांसारिक बन्धन में न पड़कर परमात्मपद की साधना हेतु जा रहा है यह तो श्रेष्ठ प्रसंग है, आनन्द की बात है' – ऐसा विचारकर उन शूरवीर शिवा माता ने मन में प्रभु के वैराग्य का अनुमोदन किया। अपने लाड़ले पुत्र को मैं कुछ ही समय पश्चात् परमात्मारूप में देखूँगी और उसकी छाया में अपना कल्याण करूँगी – ऐसे समाधानपूर्वक उन्होंने अपने मन को मनाया।

दूल्हा नेमिकुमार संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा हेतु तैयार हुए। प्रभु के वैराग्य से स्वर्गलोक में इन्द्रों के सिंहासन भी डोलने लगे, **मानों चारित्र के वीतरागी वैभव के समक्ष राग का वैभव काँप उठा।**

इन्द्र-इन्द्राणी ने नेमिकुमार की दीक्षा का प्रसंग जाना कि तुरन्त दीक्षाकल्याणक मनाने हेतु देवों सहित सौराष्ट्र देश में आ पहुँचे। सर्वप्रथम ब्रह्मस्वर्ग से ब्रह्मचारी लौकान्तिकदेव आये और स्तुति करते हुए कहने लगे – **'हे प्रभो ! विवाह के अवसर पर वैराग्य का आपका यह प्रसंग जगत के जीवों को वैराग्य की महान प्रेरणा देगा;** सुख संसार के विषयों में नहीं है, किन्तु आत्मा की वीतरागता में ही है – ऐसा धर्म सन्देश आपके जीवन से जगत को प्राप्त होता रहेगा, और दीक्षा के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त करके दिव्यध्वनि द्वारा आप अनेक जीवों का कल्याण करेंगे।'

इन्द्रगण 'देवकुरु' नामक सुन्दर शिविका लेकर आये। उसमें विराजमान होते समय इन्द्र ने प्रभु के अन्तिम स्पर्श के बहाने उन्हें पालकी में बैठाने हेतु अपना हाथ बढ़ाया, और जगत के नाथ पालकी में विराजमान हुए। अहा, नाथ का हाथ पकड़ने के सौभाग्य को इन्द्र ने अपना महाभाग्य समझा।

बारात में आये हुए हजारों राजा दूल्हा नेमिकुमार का वह वैराग्य-

प्रसंग देखकर क्षणभर तो विचार में पड़ गये कि अब क्या करें ? दूल्हा बने प्रभु नेमिकुमार तो दीक्षा लेने वन में जा रहे हैं; **उन्हें छोड़कर अब क्या हमें राजभोगों में फँसना उचित है ?** नहीं, कदापि नहीं। राजा विवेकवान थे; उन्होंने निर्णय किया कि जब राजुल को ब्याहने के लिये कुमार के साथ सांसारिक बारात में आये थे, तो अब कुमार की मोक्षपुरी की बारात में भी बाराती बनकर साथ रहेंगे। हम भी कुमार के साथ दीक्षा लेंगे। ऐसा निश्चय करके एक हजार राजा भी कुमार के साथ वनगमन हेतु तैयार हो गये। वाह, अब नेमिकुमार की बारात मुक्तिसुन्दरी को ब्याहने चली –

नेमिकुँवर की बारात चली....मोक्षसुन्दरी को वरने....
नेमि बने वैरागी राजा....मोक्षसुन्दरी को वरने....
पशुओं का जब क्रन्दन देखा कुँवरजी पीछे लौटे....
संसार का सब मायाचार कुँवर ने देख लिया।
रथ को पीछे लौटाकर चले मुक्तिसुन्दरी वरने,
संयम का मींढोल बाँधे, मुक्तिसुन्दरी वरने।
राजमति को त्यागकर चले....मोक्षसुन्दरी को वरने....
साथ-साथ सब राजा....मोक्षसुन्दरी को वरने....
नेमिकुँवर की बारात चली वन जंगल की राह....
मुक्तिसुन्दरी वरने चलें सहस्राम्रवन की राह;
समकित की तो साज सजाकर नेमि बने दूल्हा,
रत्नत्रय का मण्डप बीच में चारित्र का है बाजा;
रत्नमणि के भूषण तजकर रत्नत्रय को लिया,
राग और रमणी को तजकर मुक्तिबधु को प्यार किया।
नेमिप्रभु की बारात चली....मुक्तिसुन्दरी वरने....
नेमि बने वैरागी राजा....मुक्तिसुन्दरी वरने।

श्री नेमिकुमार की बारात मुक्ति सुन्दरी को वरने गिरनार पर्वत की

ओर चल पड़ी, वहाँ सहस्राम्रवन में पहुँचने पर उस तपोवन के फलाच्छादित हजारों आम्रवृक्षों ने मानों झुक-झुककर प्रभु का स्वागत किया। अहा, कैसी सुरम्य एवं अद्भुत थी उस वन की शोभा ! मानों मुक्तिसुन्दरी को ब्याहने का स्वयंवर मण्डप ! [ज्ञातव्य है कि गिरनार पर्वत के सहस्राम्रवन में, प्रभु के तपोवन में बैठकर ही नेमिप्रभु के दीक्षाकल्याणक का यह प्रसंग लिखा गया है और वैसी ही दीक्षा की भावना भायी गई है।]

श्रावण शुक्ला षष्ठी – जो कुमार नेमिनाथ का जन्मदिन था वही उनका दीक्षा दिवस बन गया। वैरागी नेमिनाथ ने बारह वैराग्य भावनाओं के चिन्तनपूर्वक सर्वपरिग्रह का परित्याग किया – मुकुट एवं हार उतार दिये; हाथ का कंकण छोड़कर वस्त्राभूषण भी त्याग दिये और अपरिग्रही-दिगम्बर हुए। दीक्षावन की एक उज्ज्वल शिला पर बैठकर "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" ऐसे मंगलोच्चार पूर्वक हाथ जोड़कर सिद्ध भगवन्तों को वन्दन किया और आत्मचिन्तन में शुद्धोपयोगी होकर साक्षात् श्रमण बन गये।

दूल्हा राजा के वेश की अपेक्षा इन जिनराजा के वीतरागी वेश में प्रभु अधिक शोभायमान होते थे। अहा ! आत्मध्यान में लीन उन नेमि मुनिराज के अचिन्त्य रत्नत्रय वैभव को देखकर मोक्षसुन्दरी भी उन पर मुग्ध हो गई और तुरन्त ही मनःपर्ययज्ञान को प्रभु के पास भेजकर सन्देशा कहलाया कि हे स्वामी ! मैं मोक्षसुन्दरी आपका वरण करने हेतु शीघ्र ही आ रही हूँ।

प्रभु के साथ हजारों राजाओं ने भी मुनिदीक्षा धारण की। बीच में तीर्थंकर मुनिराज और आस-पास चारों ओर एक हजार मुनिवर जहाँ विराज रहे हों, उस तपोवन की शान्ति एवं शोभा का क्या कहना। वन

के उस शान्त वातावरण से आकर्षित होकर गिरिवन के वनराज भी वहाँ आकर शान्ति से बैठ गये और मुग्ध होकर मुनिवरों के सन्मुख देखकर स्वयं भी आँखें मूँदकर शान्ति से ऐसा प्रयोग करने लगे। अहा, मोक्ष को साधने में शार्दूल-सिंह समान शूरवीर मुनिवरों के चरणों में वन के सिंह भी नमन करें – इसमें क्या आश्चर्य।

वैराग्यी राजमती

एक ओर सहस्राम्रवन में नेमिप्रभु आत्मध्यान कर रहे हैं, दूसरी ओर राजमहल के झरोखे में खड़ी हुई राजकुमारी राजुल नेमि-दूल्हे राजा को वैराग्य प्राप्त करते देखकर तथा रथ से उतरकर वन की ओर जाते देखकर मन में कहने लगी –

''अरे, प्रभो ! आपको यदि विवाह नहीं करना था तो फिर बारात लेकर यहाँ तक किसलिये आये? दूल्हा क्यों बने ?

या फिर क्या पशुओं की भाँति मुझे भी संसार-बन्धन से छुड़ाने के लिये यह एक नाटक ही था ? **क्या अपने साथ मुझे भी मोक्षपुरी की राह में ले जाने हेतु आप यहाँ पधारे थे ? धन्य हो प्रभो! अहा ! यह तो मेरे हित का ही कोई दैवी संकेत है।**

हे देव ! आप मुनि होकर वन में जायेंगे, तो मैं क्या रो-धोकर संसार में ही बैठी रहूँगी ? – नहीं; मैं भी वीरपुत्री हूँ, आपकी अर्द्धांगनी कहला चुकी हूँ, तो मैं भी आपके ही मार्ग पर आऊँगी; आपको छोड़कर दूसरे मार्ग पर नहीं जाऊँगी। आप होंगे मुनिराज, तो मैं बनूँगी आर्यिका; आप होंगे परमात्मा तो मैं होऊँगी एकावतारी !

मुझे लागे संसार असार,
ऐ रे संसार में नहीं जाऊँ....नहीं जाऊँ, नहीं जाऊँ रे....
मुझे लागे वैराग्य-पद सार,
प्रभुमार्ग से चली जाऊँ, चली जाऊँ, चली जाऊँ रे....

माता-पिता एवं परिवारजनों ने राजुल को बहुत समझाया कि – बेटी ! अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है; नेमिकुँवर के साथ सात फेरे नहीं हुए हैं, इसलिए तुम अभी कुमारिका ही हो; बेटी हम किसी दूसरे राजकुमार के साथ तुम्हारा विवाह करेंगे।

परन्तु दृढ़प्रतिज्ञ राजमती ने उन सबकी बात अनसुनी करके दृढ़तापूर्वक कहा – फेरे नहीं हुए उससे क्या ? मैं नेमिकुमार को हृदय से वरण कर चुकी, वे ही मेरे स्वामी और जीवनसाथी थे; मेरे हृदय में किसी और को स्थान नहीं है। अब सांसारिक भोगों के बदले मोक्ष की साधना में मैं उनकी संगिनी बनूँगी और उनके पंथ पर चलकर अपना आत्मकल्याण करूँगी। इसप्रकार धर्मवीर राजमती ने आर्यिका बनने का अपना दृढ़निश्चय प्रकट किया।

राजमति का ऐसा दृढ़ वैराग्य देखकर सबके मुँह से 'शुभकामना एवं शुभमस्तु' के उद्गार निकल पड़े – धन्य राजुल ! तुमने अपने हृदयेश्वर नेमिप्रभु के मार्ग पर चलने का निर्णय कर मानों मोक्षपुरी तक उनका साथ नहीं छोड़ने का मन बना लिया। इसीलिए उन्होंने तुम्हें छोड़ा और तुमने

अपने चिरसाथी आत्मप्रभु का साथ कर लिया। अनेक राजकुमारियाँ भी राजुल के साथ दीक्षा लेने को तैयार हो गईं।

'अरे, मेरे स्वामी मोक्ष में आनन्द करें और मैं संसार भ्रमण करके दुःखी होऊँ, कदापि नहीं; मैं भी प्रभु के मार्ग का ही अनुसरण करूँगी' – और उसीसमय दीक्षा ग्रहण कर वे गिरनार की गिरि गुफा में आत्मसाधना करने लगी। (– यह कथन भी मिलता है कि जब राजमती ने दीक्षा हेतु अपने पिता से आज्ञा मांगी, तब पिता ने यह कहकर आज्ञा नहीं दी कि अभी तुम घर में रहकर ही अभ्यास करो, श्री नेमिनाथ को कैवल्य की प्राप्ति होने पर उनके समवसरण में दीक्षा ले लेना।)

श्री नेमिनाथ मुनिराज का आहार

अब हम पुनः सहस्राम्रवन में नेमिप्रभु के पास चलें – दीक्षा लेकर दूल्हेराजा से मुनिराज बने नेमिप्रभु ने आत्मध्यान को लगाया है; तुरन्त ही उन्हें शुद्धोपयोग में सातवाँ गुणस्थान प्रकट हुआ है, मात्र संज्वलन के अतिरिक्त समस्त कषाय दूर हो गई हैं; मनःपर्ययज्ञान एवं चौदहपूर्वरूप श्रुतकेवलीपना उदित हुआ है, अनेक दिव्य लब्धियाँ भी प्रकट हुई हैं। आसपास अन्य हजारों मुनियों से वह तपोवन मुक्तिमण्डप की भाँति सुशोभित हो रहा है। विवाह के समय बन्धन से छुड़ाये हुए वे पशु भी प्रभु के पीछे-पीछे वन में जाकर उनके निकट ही रहने लगे हैं। अहा ! शान्ति किसे प्रिय नहीं होती ? हजारों-लाखों मोक्षार्थी जीवों ने प्रभु के दीक्षाप्रसंग पर उनके वैराग्यमय जीवन को देखकर अपने जीवन को भी ज्ञान-वैराग्य में लगाया। अहा ! उस काल गिरनार का गौरव भी आश्चर्यकारी था; वहाँ मोक्षसाधक मुनिवरों का समूह ऐसे शोभा देता था जैसे 'सिद्धों का मेला हो।'

गिरनार का समस्त वनप्रदेश वैराग्य में निमग्न हो रहा था; सर्वत्र शान्ति छा रही थी। इन्द्रों ने एवं श्रीकृष्ण, बलभद्र आदि ने भी मस्तक

झुकाकर बारम्बार उन नेमिनाथ आदि मुनिराजों का दर्शन किया।

दीक्षा के पश्चात् तीसरे दिन जब नेमि-मुनिराज आहार के लिये जूनागढ़ नगरी में पधारे, तब श्रद्धादि गुणों से विभूषित वरदत्त राजा ने उन तीर्थंकर मुनिराज को शुद्ध आहार दान देकर प्रथम पारणा कराया, देवों ने रत्नवृष्टि करके तथा दिव्यवाद्य बजाकर उस उत्तम दान की अनुमोदना की। पश्चात् स्वयं भी प्रभुचरणों में दीक्षा लेकर प्रभु के गणधर तथा चरमशरीरी बने। अहा ! नेमिनाथ मुनिराज के साथ, उन शान्त ध्यानस्थ मुनिवरों के प्रति भी केवलज्ञान लक्ष्मी आकर्षित होकर शीघ्रता से उनके निकट आ रही थी।

रत्नत्रय धारी मुनिराज नेमिनाथ स्वयं मोक्षमार्गरूप होकर मौन धारण करके ५६ दिन तक सौराष्ट्र देश के आस-पास विचरते रहे। उस चलते-फिरते 'जीवन्त मोक्षमार्ग' के दर्शन से सौराष्ट्र की धर्मप्रेमी प्रजा धन्य हुई। अहा, उन्हें देखकर भव्यजीवों को मोक्षमार्ग के स्वरूप का ज्ञान हो जाता था। वे द्रव्य-तीर्थंकर थे, आत्मा की लौं में लवलीन थे; परमात्मपद की साधना हेतु आत्मा की गहराई में उतरकर उसी में उपयोग को स्थिर करते थे। ऐसी शुद्धपरिणतिसहित विचरते हुए वे निर्मोही महात्मा ५६ दिवस पश्चात् पुनः गिरनार के तपोवन में पधारे और जहाँ दीक्षा ली थी, उसी दीक्षावन में ध्यानस्थ हुए। उनके परिणाम अधिकाधिक स्थिर होने लगे, शुद्धोपयोग की धारा उल्लसित होने लगी; एक मुहूर्त में तो हजारों बार उन्हें शुद्धोपयोग हुआ; उनकी शुद्धता देखते ही भव्यात्माओं के अन्तर से भक्ति के उद्गार निकलते थे –

रे 'शुद्ध' को श्रामण्य बोधा, ज्ञान-दर्शन 'शुद्ध' को।
अरु 'शुद्ध' को निर्वाण 'शुद्ध' हि सिद्ध, नमूँ मैं शुद्ध को ।।

श्री नेमिनाथ मुनिराज को कैवल्य की प्राप्ति

आत्मा ऐसे 'शुद्ध' रूप में परिणमित हो – यही उनका मनोरथ था। आज वह मनोरथ सम्पूर्ण होने की घड़ी आ पहुँची। प्रभु नेमि मुनिराज सातिशय ध्यान शुद्धता की ऐसी धारारूप परिणमित हुए कि अब उसमें भंग नहीं पड़ेगा। वे क्षपकश्रेणी पर चढ़ने लगे। प्रभु के अन्तर में चैतन्य का नन्दनवन अनन्तगुणों की विशुद्धता से विकसित होने लगा और उसके प्रभाव से बाह्य में गिरनार का तपोवन भी हजारों मधुर आम्रफलों से खिल उठा, मानों गिरनार पर्वत वन उन आम्रफलों द्वारा प्रभु के केवलज्ञान का स्वागत करता हो। प्रभु के अन्तर में तो ध्येय, ध्यान एवं ध्याता तथा

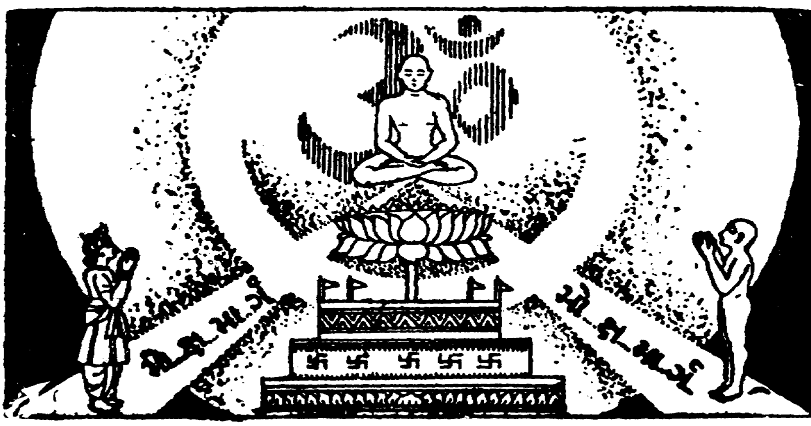

ज्ञेय, ज्ञान एवं ज्ञाता एकाकार हो रहे हैं – वहाँ न तो कोई विकल्प है और न कोई बाह्यवृत्ति एक थोड़े-से क्षण में ही शुक्लध्यानचक्र के प्रहार द्वारा समस्त कषाय – शत्रुओं का नाश करके प्रभु वीतराग हुए और समस्त घातिकर्मों को भी नष्ट करके शुद्ध हुए, बुद्ध हुए, केवलज्ञानी-अरिहन्त परमात्मा-जिन हुए। पुनः धन्य हुआ वह गिरनारधाम और उसका आम्रवन, कि जिसने चौथे से लेकर तेरहवें तक के उत्तम गुणस्थानों से विराजमान प्रभु को साक्षात् देखा, जहाँ प्रभु के दीक्षा एवं केवलज्ञान के महान कल्याणक हुए। धन्य वह भूमि....जहाँ पुनः पुनः तीर्थंकर प्रभु

का आगमन हुआ। उस तपोवन-सहस्राम्रवन का परमशान्त वातावरण आज भी हमें तीर्थंकरप्रभु की महिमा एवं आत्मसाधना की मंगलकथा सुना रहा है।

'णमो जिणाणं जितभवाणं' भव को जीतने वाले जिनों को नमस्कार ! श्री नेमिनाथ प्रभु को नमस्कार हो !!

श्रीकृष्ण के राजदरबार में

(नेमिप्रभु के केवलज्ञान की मंगल बधाई और उसकी महिमा)

द्वारिकानगरी में भव्य राजसभा भरी है। महाराजा समुद्रविजय तथा बलदेव, वासुदेव (अर्धचक्री श्रीकृष्ण) आदि बैठे हैं और नेमिनाथ प्रभु का गुणगान किया जा रहा है। इतने में एक दूत ने राजसभा में प्रवेश किया और अत्यन्त हर्षपूर्वक कहने लगा – भगवान नेमिनाथ की जय हो..बधाई हो महाराज !

महाराज ! मैं गिरनार की पवित्र भूमि से आ रहा हूँ और एक उत्तम समाचार लाया हूँ। अपने राजकुमार नेमिनाथ – जिन्होंने दो माह पूर्व विवाह के समय वैराग्य धारण करके गिरनार के सहस्राम्रवन में दीक्षा ग्रहण की थी, वे विहार करते-करते पुनः गिरनार पधारे हैं और उन्होंने आज ही (आश्विन शुक्ला प्रतिपदा के दिन) शुद्धोपयोग की उग्रतापूर्वक क्षपकश्रेणी मांडकर केवलज्ञान प्राप्त किया है।

बधाई सुनते ही सभाजन आनन्द से बोल उठे – वाह वाह ! धन्य है ! नेमिप्रभु सर्वज्ञ परमात्मा हो गये, उन्हें नमस्कार हो। ऐसा कहकर सब ने सिंहासन से उतरकर सात हाथ चलकर प्रभु को परोक्ष वन्दन किया। तथा पूरे नगर में समवसरण में पधारने हेतु दुंदुभि द्वारा घोषणा करवाने हेतु आदेश दिया।

वहाँ का प्रत्यक्ष देखा हुआ वर्णन करते हुए दूत कहने लगा – हे महाराज ! प्रभु नेमिनाथ मुनिराज गिरनार पधारे तो वहाँ के हजारों आम्रवृक्ष

प्रसन्नता से झूम उठे। एक ओर आम्रवन प्रफुल्लित हो उठा तो दूसरी ओर प्रभु के चैतन्य उद्यान में रत्नत्रय के पुष्प सम्पूर्ण प्रकार से खिल उठे और नेमिनाथ मुनिराज को केवल्य रूपी फल की प्राप्ति हुई। तात्पर्य है कि – वहाँ मुनिजनों के मध्य नेमिप्रभु ध्यानस्थ मुद्रा में निर्विकल्प हो गये; परमचैतन्य का अवलम्बन करके शुद्धोपयोग की श्रेणी चढ़ने लगे; अप्रमत्तभाव से अतीन्द्रिय आनन्द में झूलते-झूलते शीघ्रता से गुणस्थान श्रेणी आरोहण करने लगे। आठवाँ, नौवाँ, दसवाँ और बारहवाँ – ये सर्व गुणस्थान क्षण में पार करते हुए प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

अहा, गिरनार धाम और समस्त पृथ्वी आनन्दमय हो गई। अब तो इन्द्र वहाँ सहस्राम्रवन में आ पहुँचे हैं और केवलज्ञान की पूजा कर रहे हैं। अद्भुत समवसरण में विराजमान सर्वज्ञप्रभु नेमिनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से गिरनारधाम गूँज रहा है। प्रभु की अद्भुत वाणी से परमशान्त चैतन्यरस झर रहा है। अहा, उस दिव्यता की क्या बात करूँ।

प्रभु के केवलज्ञान की बधाई सुनकर श्रीकृष्ण आदि सभाजन हर्षपूर्वक बोल उठे – वाह ! आज तो सचमुच सब मंगल-मंगल भासित हो रहा है....समस्त विश्व मंगलमय लगता है।

आज प्रात:काल तो भगवान साधुपद में थे और अभी-अभी केवलज्ञान प्राप्त करके अरिहन्तपद में पहुँच गये। अब 'णमो लोए सव्व साहूणं' में से 'णमो अरिहन्ताणं' में आ गये।

ठीक ही है; भगवान नेमिनाथ को तीर्थंकर प्रकृति का उदय आज प्रारम्भ हुआ; चैतन्य में केवलज्ञान का प्रकाश और पुद्गल में तीर्थंकर प्रकृति का प्रकाश – ऐसा सर्वोत्कृष्ट सुयोग आज गिरनार के सहस्राम्रवन में वर्त रहा है, और साथ ही साथ रत्नत्रयधारी गणधर, हजारों मुनिवर तथा वैराग्यमय राजुलदेवी आदि हजारों आर्यिका मातायें भी प्रभु की धर्मसभा में सुशोभित हैं। जैनशासन का धर्मचक्र तीव्रता से गतिमान है।

अहा ! भगवान के आत्मा में द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव सर्वप्रकार से मंगल है। भगवान नेमिनाथ का आत्मद्रव्य परमपारिणामिक भाव से त्रिकाल-मंगलरूप है, वह 'मंगल-द्रव्य' है; केवलज्ञान तथा अतीन्द्रिय महा आनन्द से भरपूर उनके असंख्यात चैतन्य प्रदेश वह 'मंगल-क्षेत्र' है। जहाँ वे विराजमान हैं ऐसा गिरनार तीर्थ भी 'मंगल-क्षेत्र' है। (श्री वीरसेनस्वामी ने षट्खण्डागम की धवला टीका में गिरनार, पावापुरी, राजगृही आदि तीर्थों को 'मंगल-क्षेत्र' के रूप में स्मरण किया है।) अपने चैतन्य स्वभाव के अवलम्बन से प्रभु को जो अपूर्वपर्याय प्रकट हुई वह 'मंगल-स्वकाल' है, तथा आज यह आश्विन शुक्ला प्रतिपदा का दिन भी प्रभु के ज्ञान कल्याणक के कारण मंगल है, और भगवान नेमिनाथ का आत्मा शुद्धोपयोग से केवलज्ञान रूप होकर परम आनन्दरूप परिणमित हो रहा है वह 'मंगल-भाव' है।

अहा, जिनेन्द्र भगवान के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का ऐसा मंगलपना विचारने से अपने भावों में भी चैतन्य तत्त्व की कोई अगाध महिमा प्रकट होती है, वह भी 'भाव-मंगल' है।

श्रीकृष्ण कहते हैं – वाह, बड़ी ही सरस बात ! आचार्य भगवन्तों ने भी कहा है कि जो जीव भगवान अरिहन्तदेव के आत्मा को चैतन्यभाव से जानता है, वह जीव राग एवं चैतन्य की भिन्नता को जानकर अपने आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जान लेता है, अर्थात् दर्शनमोह का नाश करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। अरिहन्तदेव के आत्मा की सच्ची पहिचान का यह 'मंगल-फल' है।

भगवान अरिहन्तदेव की यह एक अचिन्त्य विशेषता है कि यद्यपि उनकी उपदेश, विहारादि क्रियायें तीर्थंकर नामकर्म के उदय से होने के कारण औदयिकी हैं तथापि मोह के अभाव के कारण उनकी वे क्रियायें क्षायिकी ही मानी गई हैं; क्योंकि वे क्रियायें उन्हें बंध का कारण नहीं

होतीं और उनको क्षण-क्षण कर्म का क्षय ही होता जाता है। वाह, अद्भुत बात है ! भगवान के क्षायिक भाव को तथा औदयिकभाव को जो भिन्न-भिन्न स्वरूप से जाने वही इस बात को समझ सकता है और यह बात समझने से अपूर्व भेदज्ञान होकर उस जीव के कर्मों का क्षय होने लगता है।

बलभद्र कहते हैं – श्री नेमिनाथजी आज सर्वज्ञ भगवान हुए, वे किसप्रकार हुए ? देखो....सुनो ! शुद्धोपयोग के प्रसाद से ही वे सर्वज्ञ हुए हैं। सर्वज्ञ होने के पूर्वक्षण में वे राग का सर्वथा क्षय करके पूर्ण वीतराग हुए और पश्चात् ही सर्वज्ञ हुए हैं। राग का एक सूक्ष्म अंश भी सर्वज्ञता को रोकता है; इसलिए जो वीतराग हो वही सर्वज्ञ होता है। राग का कोई अंश ज्ञान का कारण नहीं होता। **आत्मा स्वयं ज्ञानस्वभावी है, वही स्वयंभू सर्वज्ञ होता है। इसप्रकार आत्मा स्वयं ही सर्वज्ञता का साधन होता है।**

अहा, सर्वज्ञ भगवन्त स्वयंभू हैं, जिसप्रकार आकाश में सूर्य अन्य किसी के अवलम्बन बिना स्वयं ही – स्वयमेव प्रकाश एवं उष्णतारूप है, उसीप्रकार चैतन्य भगवान आत्मा अन्य किसी के अवलम्बन बिना स्वयं ही स्वयंभूरूप से ज्ञान एवं आनन्द रूप है।

सर्वज्ञ लब्धस्वभाव अरु, त्रिजगेन्द्र पूजित इस विधि।
स्वयमेव जीव रहा हुआ, उसको 'स्वयंभू' जिन कहे॥

अहो, उन स्वयंभू भगवान सर्वज्ञदेव के दिव्यज्ञान की अचिन्त्य महिमा का क्या कहना ? वह परम-आनन्दमय सर्वज्ञपद वीतरागी संतों को प्रिय है। उन अरिहन्त भगवन्तों का अतीन्द्रिय महा-आनन्द पंचेन्द्रिय के विषयरहित है, पुण्यफलरहित है, रागरहित है और शुद्धोपयोग द्वारा आत्मा में से ही वह प्रकट हुआ है; वह स्वाभाविक आनन्द कहीं बाहर से आया हुआ नहीं है –

अत्यन्त आत्मोत्पन्न विषयातीत अनूप अनन्त अरु।
विच्छेदहीन वह सुख अहो ! शुद्धोपयोग-प्रसिद्ध का॥

उन अरिहन्त भगवन्तों को आत्मा में से जैसा सुख और जैसा आनन्द प्रकट हुआ, वैसा सुख और वैसा आनन्द प्रत्येक आत्मा का स्वभाव है। ऐसे स्वभाव को जो जीव प्रसन्न होकर उल्लासपूर्वक स्वीकार करता है वह जीव आसन्नभव्य है, निकट भविष्य में ही मोक्षगामी है।

अहा ! केवलज्ञान तो आत्मा का स्वभाव है; उस स्वभाव को स्वीकार करनेवाला जीव मोक्ष का साधक हो जाता है; फिर उसके अनन्त भव नहीं होते, केवली भगवान ने निकट में ही उसका मोक्ष देखा है। वाह, केवलज्ञान के इस न्याय में तो अतिगम्भीरता है, उसके स्वीकार में ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता होकर मोक्ष की ओर का अनन्त पुरुषार्थ प्रारम्भ होता है। इसलिए, सर्वज्ञ की श्रद्धा, वह धर्म का मूल है।

अहा ! अपने महान भाग्योदय से अपनी इस सौराष्ट्र भूमि में गिरनारधाम में हमें ऐसे सर्वज्ञप्रभु नेमिनाथ भगवान के साक्षात् दर्शन प्राप्त हो रहे हैं। अपने सौराष्ट्र का गिरनार प्रदेश तो सिंहों की जन्मभूमि है; आज धर्म के केसरी सिंह समान केवली परमात्मा अपनी इस भूमि में उत्पन्न हुए हैं। चलो, हम सब गिरनारधाम में चलें और तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभु के दर्शन कर और उनकी दिव्य वाणी का श्रवण कर धन्य हों।

– इसप्रकार महाराजा समुद्रविजय तथा श्रीकृष्ण, बलभद्र आदि सब धूमधाम सहित सर्वज्ञपद की अत्यन्त महिमा पूर्वक नेमिनाथ प्रभु के दर्शन करने चले। दूसरी ओर स्वर्गलोक के देव-देवेन्द्र भी भव्य शोभायात्रा सहित नेमिनाथ तीर्थंकर के केवलज्ञान-कल्याणक का उत्सव मनाने आ पहुँचे। प्रभु को केवलज्ञान होते ही, उसके साथ की तीर्थंकर प्रकृति के प्रभाव से सम्पूर्ण स्वर्गलोक में हर्ष और उत्साह छा गया। अरे, स्वर्गलोक तो ठीक, नरक के नारकियों ने भी उस क्षण शान्ति का अनुभव

किया। नरकों में अचानक ऐसी शान्ति का होना एक महान आश्चर्य था और उस आश्चर्य के कारणरूप तीर्थंकर की अचिन्त्य महिमा का चिन्तवन करने से अनेक जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त हुए। देवों और मनुष्यों के अलावा सिंह और शशक, नाग और बाघ, मगर और मोर आदि तिर्यंचों के समूह भी तीर्थंकर प्रभु के दर्शन हेतु दौड़-दौड़ कर आने लगे। जगत की उत्कृष्ट धर्मसभा वहाँ सहस्राम्रवन में भरी थी और उसके मध्य त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर परमात्मा नेमिनाथ भगवान अंतरीक्ष में विराजमान थे। आनन्द के धाम ऐसे नेमिनाथ को शतेन्द्र पूज रहे थे। उस प्रसंग को लक्ष्य में लेकर स्तुतिकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारीदेव (नियमसार-टीका में) कहते हैं कि –

शतमुख-शत-पूज्यः प्राज्य सद्बोधराज्यः;
स्मरतसुरनाथः प्रास्त-दुष्टा घयुथः।
पदनत-वनमाली भव्य-पद्मांशुमालि;
दिसतु शमनिशं नो नेमिः आनन्दभूमिः॥

अहा ! कैसा होगा वह पावन दृश्य ! जहाँ एक ओर तो मुनिगण सर्वज्ञ प्रभु की स्तुति करते होंगे और दूसरी ओर श्रीकृष्ण तथा इन्द्रादि भक्ति से सिर झुकाकर प्रभु नेमिनाथ की वन्दना कर रहे होंगे। वाह, नेमिनाथ और श्रीकृष्ण – एकसाथ दो तीर्थंकरों का सुयोग; एक तो वर्तमान तीर्थंकर और दूसरे भावी तीर्थंकर, जो भरतक्षेत्र में आगामी चौबीसी के तीर्थंकर होंगे।

तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान का समवसरण

महाराजा समुद्रविजय, बलभद्र, श्रीकृष्ण तथा उनके पुत्र-पौत्र शम्बुकुमार, प्रद्युम्नकुमार, अनिरुद्ध कुमार आदि समवसरण में विराजमान परमात्मा नेमिनाथ के दर्शनों से अतिप्रसन्न हुए। महाराजा श्रीकृष्ण को महान गौरव का अनुभव हुआ कि अहा ! मेरे लघुभ्राता तीर्थंकर हुए;

इतना ही नहीं, धर्म के किसी अचिन्त्य उल्लास से उन्होंने प्रभु चरणों में तीर्थंकर प्रकृति बाँधना प्रारम्भ किया। (श्रीकृष्ण की भाँति बलभद्र के भी भावी तीर्थंकर होने का पुराणों में उल्लेख है।) त्रिलोक के इन्द्रों द्वारा पूज्य तथा सर्वोत्कृष्ट ज्ञान साम्राज्य के स्वामी ऐसे परमात्मा नेमिनाथ ने सर्वप्रथम गिरनार के तपोवन में दिव्यध्वनि द्वारा मोक्षमार्ग बतलाकर भव्यजीवों को परम आनन्दित किया। हस्तिनापुर से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि पाण्डव (जो कि नेमिनाथ प्रभु के बुआ-मामा के भाई होते थे) भी प्रभुदर्शन हेतु गिरनार आ पहुँचे और वे सर्वज्ञ परमात्मा नेमिनाथ की धर्मसभा देखकर अति आनन्दित हुए।

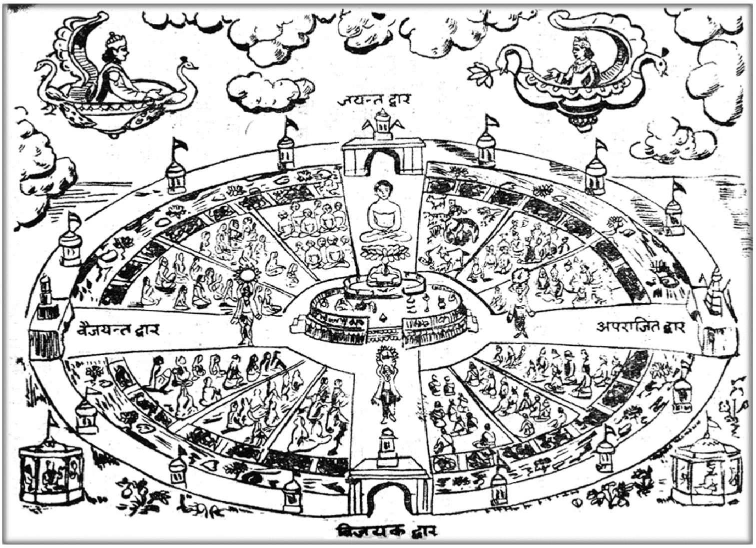

नेमिप्रभु की धर्मसभा में महाराजा वरदत्त (जिन्होंने नेमिनाथ प्रभु को मुनिदशा में प्रथम आहार दान दिया था) प्रभु के धर्ममंत्री (गणधर) बने। उन वरदत्त सहित ग्यारह गणधर समवसरण-सभा को सुशोभित करते थे। इतना ही नहीं, प्रभु के सह-दीक्षित हजारों मुनियों में से डेढ़ हजार मुनिवर तो केवलज्ञान प्राप्त करके अरिहन्त पद पर समवसरण में ५,००० धनुष ऊपर आकाश में विराजते थे। वास्तव में अद्भुत था वह भगवन्तों का

सम्मेलन ! तदुपरान्त मन:पर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, श्रुतकेवली तथा विविध ऋद्धियों के धारक कुल १८,००० मुनिवर उस धर्मसभा में मोक्ष की साधना कर रहे थे; राजमति आदि आर्यिकायें भी अब गिरि गुफा का निवास छोड़कर ४०,००० आर्यिकाओं के संघसहित प्रभु के समवसरण में शोभायमान थीं। एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें सम्यक्त्व एवं व्रतसहित मोक्ष की उपासना कर रहे थे। देवों और तिर्यंचों का तो कोई पार नहीं था। प्रभु की धर्मसभा में सबको आत्मवैभव का अपूर्वनिधान मिल रहा था। अहा, **कितनी शोभायमान होगी गिरनार की वह धर्म सभा और जगत में सौराष्ट्र के गिरनार तीर्थ का कितना महान गौरव होगा। आज भी वह गिरनार लाखों-करोड़ों जीवों द्वारा तीर्थरूप में पूजित है और भगवान नेमिनाथ की महिमा जगत में प्रकाशित कर रहा है।**

गिरनार के उस आम्रवन के बीच आश्चर्यकारी धर्मसभा में प्रभु नेमिनाथ ने दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश दिया कि – "भो भव्यजीवो ! हमें जो सर्वज्ञ-परमात्म पद प्रकट हुआ वह आत्मा में से ही प्रकट हुआ है, तुम्हारे आत्मा में भी ऐसा ही परमात्म पद भरा है; उसे पहिचानकर श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा उसकी उपासना करके तुम भी परमात्मा बन सकते हो। उन्होंने ऐसा सर्वाधिक आनन्दजनक परमात्मवैभव भव्यजीवों को बतलाया। इसप्रकार चैतन्यतत्त्व की अगाध महिमा जानकर अपने में उसकी अनुभूति करना सो जैनशासन है। जिसप्रकार भगवान ऋषभदेव की धर्मसभा में मोक्षगामी भरतादि राजाओं ने धर्म का श्रवण किया था, उसीप्रकार नेमिनाथ की धर्मसभा में मोक्षगामी पाण्डवों तथा गजकुमार, प्रद्युम्न आदि ने धर्म का श्रवण किया। प्रभु की आयु १,००० वर्ष की थी; उसमें से तीन सौ वर्ष की आयु में प्रभु केवली परमात्मा हुए; पश्चात् ७०० वर्ष तक तीर्थंकर रूप में विहार करके भारतभूमि में धर्मामृत वर्षाया।

धर्मचक्र सहित देश-देशान्तर में विहार करते हुए प्रभु नेमिनाथ कभी-

कभी रैवतगिरि (गिरनार) पधारते थे। एकबार प्रभु का आगमन होने पर श्रीकृष्ण-बलभद्र परिवार सहित प्रभु के दर्शन करके अति आनन्दित हुए और धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् **श्रीकृष्ण ने पूछा –** हे देव ! इस संसार में आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी अनेक मिथ्या मान्यतायें चलती हैं कि आत्मा जैसी कोई वस्तु है ही नहीं; कोई उसे पृथ्वी, जलादि अचेतन के संयोग से हुआ मानते हैं; कोई उसे जड़-शरीररूप ही मानते हैं; कोई उसे एकान्त कूटस्थ, अपरिणामी मानते हैं तो कोई एकान्त क्षणिक नाशवान मानते हैं, कोई उसे पर्याय, गुण रहित मानते हैं; – ऐसी अनेक प्रकार की मिथ्या मान्यतायें चलती हैं; तो हे प्रभो ! आत्मा का सत्य स्वरूप क्या है ? वह समझाइये !

प्रभु की वाणी में आया – हे भव्य ! तुम भावी तीर्थंकर हो; तुमने उत्तम प्रश्न पूछा। सुनो, सत्यरूप। इस विश्व में अनन्त जीव स्वतंत्ररूप से विद्यमान तत्त्व हैं, उनमें से 'मैं' ऐसे स्वसंवेदन द्वारा आत्मा सदा, सर्वत्र अपने अस्तित्व को प्रसिद्ध करता है। कोई भी जीव किसी भी स्थिति में, **'मैं नहीं हूँ' – ऐसा अपना अभाव सिद्ध नहीं कर सकता,** अपने अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि 'मैं नहीं हूँ' – ऐसा कहनेवाला स्वयं ही जीव है। आत्मा सत्-विद्यमान है, वह ज्ञानमय-सुखमय वस्तु है, स्वयं अपने में है; अपने गुण-पर्यायरूप भावों में स्थित, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है। **सदा शरीर से भिन्न लक्षणवाला उसका अस्तित्व है, वह 'ज्ञाता' ऐसे चिह्न द्वारा ज्ञात होता है।** यद्यपि अरूपी होने के कारण वह इन्द्रियों द्वारा भले ही दृष्टिगोचर नहीं होता हो, परन्तु अन्तर में इन्द्रियों से परे अपने अनुभवज्ञान द्वारा वह स्पष्ट ज्ञात होता है – अनुभव में आता है। राग के तथा बाह्यविषयों के बिना, एकाकी ही सुखी होने का उसका स्वभाव है। ऐसे परमतत्त्व रूप अपने आत्मा को जानकर हे भव्य ! तुम कषायों से भिन्नरूप उसकी उपासना करो, यही मोक्ष साधने की रीति है।

आत्मा के अस्तित्व की ऐसी सुन्दर सिद्धि सुनकर सर्व श्रोताजनों का चित्त प्रसन्न हो गया। अनेक भव्यजीवों ने अपने सम्यक्त्व को उज्ज्वल किया। श्रीकृष्ण ने प्रभु की वाणी में अपने पूर्वभव तथा भविष्य के भी मोक्ष तक के दो भव जान लिये। पूर्वभव में स्वयं मुनि थे, परन्तु निदान बन्ध के यह भव प्राप्त किया। इसी कारण धर्म की भावना में मन को स्थिर तो किया; फिर भी, आयुबंध के कारण वे व्रत नहीं ले सके। अनेक जीव प्रभु के उपदेश से आत्मा के शुद्ध स्वरूप को यथार्थ जानकर, उसका अनुभव कर, मोक्षमार्ग में प्रविष्ट होकर, परम आनन्दित हुए।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण की माता देवकी ने वरदत्त गणधर को वन्दन करके **अपने मन की शंका पूछी कि –** हे देव ! मेरे आँगन में दो मुनिराज आहार के लिये पधारे थे; दूसरे दिन वे ही मुनिराज फिर पधारे और तीसरे दिन भी वे ही दो मुनिराज मेरे घर आहार लेने पधारे; तो वे मुनिवर मेरे यहाँ बार-बार क्यों पधारे ? उन्हें देखकर मेरे अन्तर में अत्यन्त स्नेह उमड़ता था, उसका क्या कारण है ?

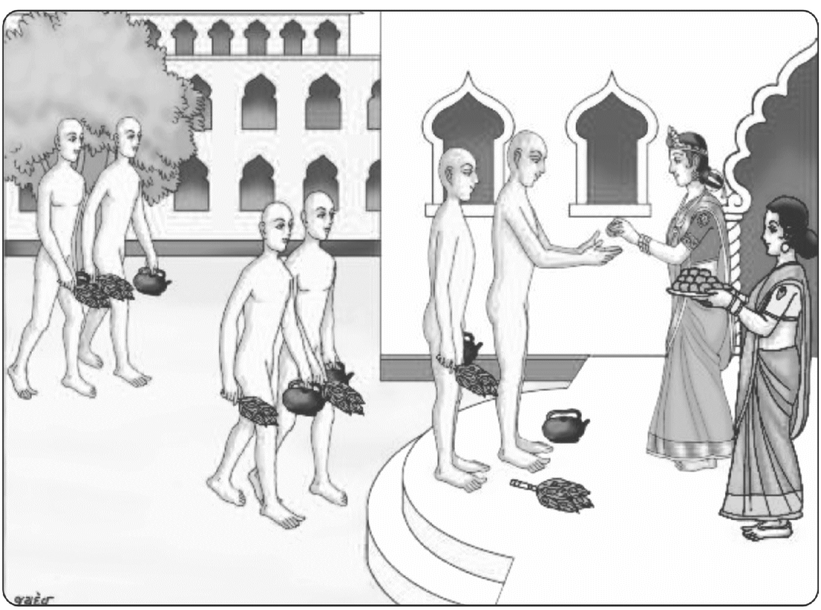

दिव्यज्ञानी गणधरदेव ने देवकी माता के मन का समाधान करते हुए कहा – हे भव्यात्मा ! आपके आँगन में तीन बार जो मुनि-युगल पधारे, वे मुनि-युगल वही के वही नहीं थे, परन्तु हर बार अलग-अलग थे, और वे मुनिवर आपके पुत्र ही थे। श्रीकृष्ण के अवतार से पूर्व तीन बार जो युगल-पुत्र अवतरित हुए थे, उनका आपके भाई कंस के भय से अन्यत्र लालन-पालन हुआ था, वे छहों पुत्र जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गये थे। आपने बचपन से ही अपने उन पुत्रों को नहीं देखा था; उन छहों का रूप एक-सा था, इसलिये आप उन्हें नहीं पहिचान सकीं; परन्तु वे आपके पुत्र होने से, प्राकृतिक रूप से आपको उनके प्रति पुत्रवत् स्नेह उमड़ता है....और सुनिये ! **वे छहों मुनिवर कि जिनका नाम देवदत्त-देवपाल, अनिकदत्त-अनिकपाल तथा शत्रुघ्न-जितशत्रु है, वे छहों चरमशरीरी हैं, इसी भव से मोक्ष प्राप्त करेंगे।**

पूर्वभव में भी वे छहों भाई थे और आपके ही पुत्र थे। अपने छहों पुत्र मोक्ष जाने वाले हैं – ऐसा जानकर तथा उनके पूर्वभव सुनकर देवकी माता आश्चर्यपूर्वक वैराग्य को प्राप्त हुई, परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति मोह के कारण दीक्षा नहीं ले सकीं।

पश्चात् बलदेव ने श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नकुमार तथा शम्बुकुमार का जीवन चरित्र पूछा। गणधर स्वामी ने उसका संक्षेप में वर्णन किया।

श्रीकृष्ण के पुत्र : चरमशरीरी प्रद्युम्न तथा शम्बु के पूर्वभव

रुक्मणी का पुत्र प्रद्युम्न तथा जाम्बुवती का पुत्र शम्बु (शंभव); वे दोनों जीव कुछ भव पहले मगधदेश में अग्निभूति तथा वायुभूति नाम के दो भाई थे। दोनों भाई नास्तिक थे। एक बार उन्होंने एक जैनमुनि के साथ वाद-विवाद किया। मुनिराज ने अनेकान्त विद्या द्वारा जीव का अस्तित्व, उसका ज्ञानस्वभाव तथा सर्वज्ञतारूप परमात्म पद की सिद्धि करके उन दोनों भाइयों को पराजित कर दिया। उससे अपमानित हुए

वे दोनों भाई रात्रि के समय उन ध्यानस्थ मुनि को मारने के लिये तैयार हुए कि एक यक्षदेव ने उन्हें वहीं कील दिया।

तब उनके माता-पिता ने यक्ष से पुत्रों को छोड़ने की प्रार्थना की। यक्षदेव ने कहा – तुम हिंसा रूप धर्म को छोड़कर मुनिराज से क्षमायाचना करो और परम अहिंसारूप जैनधर्म को स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे पुत्रों को मुक्त कर दूँगा। उन्होंने यक्ष की आज्ञा का पालन किया और दोनों भाई छूट गये।

फिर उनके पिता ने कहा – बेटा, अब तुम जैनधर्म को छोड़ दो, क्योंकि हमने तो मात्र दिखावे के लिये स्वार्थवश जैनधर्म को स्वीकार किया था।

तब दोनों भाईयों ने पिता की बात मानने से इन्कार कर किया और कहा कि – 'जैनधर्म के कारण ही हमारी रक्षा हुई, इसलिये हम उसे नहीं छोड़ सकते' – इसप्रकार दोनों ने दृढ़तापूर्वक जैनधर्म में आस्था प्रकट की और श्रावकधर्म का पालन करके स्वर्ग गये। वहाँ से निकलकर वे दोनों अयोध्यापुरी में पूर्णभद्र तथा मणिभद्र नामक श्रेष्ठिपुत्र हुए। जैनधर्म की उपासना करके वे पुन: स्वर्ग गये और फिर हस्तिनापुर में राजपुत्र हुए। उनके नाम मधु (प्रद्युम्न का जीव) और क्रीड़व (शम्बु का जीव) थे।

जब मधु और क्रीड़व/कौटभ दोनों भाई सुख पूर्वक राज्य करते थे; तब वटपुर के राजा वीरसेन (कनकरथ) की अतिरूपवती, मधुभाषिणी रानी चन्द्राभा को देखकर राजा मधु का मन उसके प्रति आकर्षित हो गया। यद्यपि राजा मधु की बुद्धि शास्त्रों में दृढ़ है तो भी चन्द्राभा को देखकर रागरूप हो गई।

जिस प्रकार चन्द्रकांत मणि की शिला दृढ़ है तो भी चन्द्रमा को देखकर नरम हो जाती है। राजा मधु मन में विचारता है कि

यदि मैं इस रूप-सौभाग्य से युक्त होकर राज्य करूँ तो राज्य सुखरूप है, इस स्त्रीरत्न के बिना यह राज्यलक्ष्मी श्रीविहीन है। जैसे चन्द्रमा कलंकी होने पर भी चांदनी से शोभता है, वैसे ही मुझे परस्त्री हरण का कलंक तो लगेगा, परन्तु उसके बिना अब मेरा जीवन निर्वाह असंभव है।

''चन्द्राभा के प्रति मन आसक्त है जिसका''– ऐसे राजा मधु ने बसन्त ऋतु का महोत्सव रचाया, जिसमें सभी राजाओं को आमन्त्रित किया। उस महोत्सव में रानी चन्द्राभा सहित राजा वीरसेन को भी विशेष सम्मान के साथ बुलाया।

महोत्सव समाप्ति पर राजा मधु ने समस्त राजाओं को तो सपरिवार वस्त्राभरण देकर विदा कर दिया; परन्तु राजा वीरसेन को विशेष सम्मान करके अकेले ही वटपुर के लिये विदा किया और उसकी रानी चन्द्राभा को यह कहकर अपने ही पास रोक लिया कि ''अभी रानी चन्द्राभा के योग्य आभूषण तैयार हो रहे हैं, सो थोड़े ही दिनों में उनके योग्य आभूषण तैयार हो जाने पर हम उन्हें विदा करेंगे।'' राजा वीरसेन तो भोला था, अत: वह राजा मधु की इस बात का विशवास कर अकेला ही अपने राज्य वापस चला गया।

तत्पश्चात् राजा मधु ने चन्द्राभा को अपने घर में रखा, पटरानी का पद दिया और उसके साथ पत्नि की भाँति व्यवहार करने लगा। राजा मधु के जोर और भय के कारण रानी चन्द्राभा उसका विद्रोह तो न कर सकी, परन्तु मन ही मन अपने पति राजा वीरसेन को याद करके कुछ काल तक तो वह बहुत दु:खी रही, फिर धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य हो गया। इधर रानी चन्द्राभा के वियोगरूप अग्नि से दु:खी राजा वीरसेन विलाप कर-करके पागल हो गया तथा पागल होकर चन्द्राभा की रट लगाते हुए पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा।

एकबार विलाप करता, घूमता-घूमता वह राजा वीरसेन अयोध्या आ पहुँचा। उस समय रानी चन्द्राभा अपने महल के झरोखे में बैठी थी। वह अपने पति को देखकर दयावान होते हुए राजा मधु से कहती है कि हे नाथ ! मेरे पति को देखो ! वह प्रलाप करते हुए पागल हुए घूमते हैं। पर राजा मधु ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया और राज-न्यायालय में चला गया। पटरानी होने के नाते चन्द्राभा भी उनके साथ राज-न्यायालय गई।

उसी समय राज-न्यायालय में कोतवाल एक परस्त्री लम्पटी को पकड़कर राजा मधु के पास लाया और कहा कि देव ! यह महापापी है, इसने परस्त्री सेवन जैसा महान अपराध किया है। **परस्त्री सेवन का दण्ड राज न्याय में हाथ-पैर और शिर का छेद करना कहा है। सो राजा ने उसे भी यही कठोर दण्ड घोषित किया।**

तब रानी चन्द्राभा ने यह सब जानते हुए भी राजा से पूछा कि हे नाथ ! इसने ऐसा कौन-सा भयंकर अपराध किया है कि इसे ऐसा कठोर दण्ड देते हो ?

तब राजा ने कहा – **परस्त्री-सेवन के समान अन्य कौन-सा भयंकर अपराध है/बड़ा पाप है ?** इसने वही पाप किया है।

तब रानी चन्द्राभा ने कहा – **इस पाप का दण्ड प्रजा को ही है या राजा को भी है ?**

तब राजा ने कहा कि सबके लिये एक ही दण्ड है।

तब रानी ने हँसकर अपना मुँह नीचा कर लिया, **जिसका आशय यह था कि तुम भी परस्त्री-रत पापी हो।**

तब राजा मधु मन ही मन इस अभिप्राय को समझकर हताश हो गया। राजा मन में विचार करता है कि **रानी ने मेरे कल्याण के लिये सत्य ही बात कही है। परस्त्री का हरण दुर्गति का कारण**

है। अत: राजा वैराग्य को प्राप्त हो गया, रानी भी वैराग्यरूप हो गई।

राजा को विरक्त जानकर रानी कहती है कि हे नाथ ! **ऐसे अन्यायरूप भोग से क्या ? यह परस्त्री का विषय किंपाकफल के सामान दु:खदाई है, बाह्य में मनोज्ञ लगे उससे क्या ? भोग तो अपने और पर को संतापकारी ही हैं। समस्त विषय शास्त्र से विरुद्ध है। परस्त्री-परधन हरण, माँस भक्षण आदि तो महापाप हैं। ऐसे पापों को करने वाले नरक-निगोद में जाते हैं** – इसप्रकार रानी चन्द्राभा ने राजा मधु को सम्बोधित किया।

तब राजा मधु को साक्षात् वैराग्य हो गया। भोगरूपी मदिरा को तजकर अति-आदर से वह राजा मधु रानी चन्द्राभा से कहता है कि हे सत्यभासिनी ! तूने सत्य ही कहा है। ऐसा कार्य भले पुरुष के योग्य नहीं है। उससे नरकादिक की पीड़ा उत्पन्न होती है। ऐसा करने वाले महापापी इस भव में दु:खी होकर अपयश प्राप्त करते हैं और परभव में नरक जाते हैं। मेरे जैसा राजा ही ऐसा निंद्यकर्म करता है तो प्रजा को कौन रोकेगा ? **जो अपनी स्त्री में भी अधिक राग करता है, वह भी निंद्य एवं तीव्र कर्मबन्ध का कारण है, तब परस्त्री सेवन की तो बात ही क्या करें ?**

पश्चात् राजा मधु को अपने दुराचार के लिये पश्चाताप हुआ और मुनिराज के निकट धर्मोपदेश सुनकर अपने भाई क्रीड़व/कौटभ (शम्बु का जीव) के साथ संयम धारण किया और धर्म की आराधना द्वारा पापों को धो डाला। दोनों भाई पुण्य उदय से स्वर्ग गये और वहाँ से निकलकर राजा मधु का जीव को रुक्मणी का पुत्र प्रद्युम्न और उसके भाई क्रीड़व का जीव जाम्बुवती का पुत्र शम्बुकुमार हुआ है।

श्रीकृष्ण के ये दोनों पुत्र चरमशरीरी हैं और इस गिरनार से ही मोक्ष प्राप्त करेंगे। प्रद्युम्न और शम्बुकुमार के जीवन की यह बात सुनकर सबको बड़ा हर्ष हुआ।

चरमशरीरी प्रद्युम्न तथा शम्बु वर्तमान भव

एक दिन रात्रि के समय श्रीकृष्ण की भार्या रुक्मणी ने सोते हुए स्वप्न में अपने को हंस-विमान पर चढ़कर आकाश में गमन करते देखा। फिर जागृत होने पर अति प्रसन्न हुई। प्रात:काल अपने पति श्रीकृष्ण से स्वप्न का फल पूछा। श्रीकृष्ण ने कहा कि हे रानी ! तुझे पुत्ररत्न प्राप्त होगा, जो भविष्य में महापुरुष होगा। पति के ये वचन सुनकर रुक्मणी हर्षित हुई और तत्पश्चात् नव माह पूर्ण होने पर रुक्मणी के सर्व लक्षणों से युक्त पुत्र का जन्म हुआ।

यह प्रद्युम्नकुमार जब मात्र छह दिन का बालक था, तब असुर धूमकेतु देव द्वारिका मार्ग से विमानमार्ग द्वारा जा रहा था, रुक्मणी के महल के ऊपर से जाता हुआ उसका विमान थम गया। अवधिज्ञान से उसने जाना कि यह कुमार मेरा पूर्वभव का शत्रु है; पूर्वभव में इसने मेरी रानी का अपहरण किया था। इसलिये शत्रुता का बदला लेने के लिये उसने दैवी विद्या से प्रद्युम्नकुमार का अपहरण कर लिया। वह उसे मार डालने का विचार कर रहा था, परन्तु चरमशरीरी प्रद्युम्न की आयु के प्रताप से उसमें दया का संचार हुआ और वह बालक प्रद्युम्न को एक शिला के नीचे दबाकर चला गया।

अररे ! धिक्कार है ऐसे बैर को जो पाप को बढ़ाने वाला है।

प्रश्न :– वह ६ दिन का बालक प्रद्युम्न उस विशाल शिला के नीचे दबकर भी कैसे बचा ?

उत्तर :– उसीसमय कालसंवर नाम का विद्याधर राजा वहाँ से निकला। शिला ऊँची-नीची होते देखकर वह आश्चर्यचकित हुआ और उसके नीचे अत्यन्त सुन्दर चरमशरीरी बालक को देखकर उसके हर्ष का पार नहीं रहा। उसने वह बालक अपनी रानी कनकमाला को

दिया और युवराजपद पर स्थापित करके उन्होंने उसका पुत्रवत् लालन-पालन किया।

दूसरी ओर द्वारिका में पुत्रवियोग से तड़पती रुक्मणी का क्या हुआ? – वह सुनो।

छह दिन के अपने पुत्र को शयनकक्ष में न देखकर रुक्मणी व्याकुल हो उठी। महल में चारों ओर खोजने पर भी उसका कहीं पता नहीं लगा।

तब श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि – "जगत में दो ही पदार्थ हैं। एक दैव और दूसरा पुरुषार्थ। उनमें से जगत में तो दैव ही बलवान है; क्योंकि वह स्वयं उपार्जित किया हुआ है। और पुरुषार्थ तो पर में चलता नहीं है, अत: जो पुरुषार्थ का गर्व करता है उसको धिक्कार है। यदि पुरुषार्थ ही बलवान होता तो नग्गी तलवार सहित मेरे और बलदेव के होते हुए मेरे पुत्र को शत्रु कैसे ले जा सकता था ?" इत्यादि विचार करके फिर श्रीकृष्ण ने रुक्मणी को सान्त्वना देते हुए कहा –

"हे प्रिये ! तू शोक न कर, धैर्य धारण कर। वह पुत्र स्वर्ग लोक से आया है, पुण्य का अधिकारी है, अत: अल्पायु वाला नहीं हो सकता। मेरे समान पिता और तुम्हारे समान माता का पुत्र हीनपुण्य और अल्पायु वाला नहीं हो सकता। यह कोई ऐसा ही भवितव्य होगा। ऐसे अनेक जीव अपहृत होकर वापस आते हैं। तेरा पुत्र लोगों के नेत्रों के उत्सव का कर्त्ता है।"

श्रीकृष्ण और रुक्मणी पुत्र-वियोग से अत्यन्त शोकमग्न रहने लगे; इसलिये श्रीकृष्ण के मित्र नारदजी उसे खोजने के लिये विदेहक्षेत्र गये और वहाँ विराजमान स्वयंप्रभ तीर्थंकर के समवसरण में जाकर प्रद्युम्न की कथा सुनी। पश्चात् द्वारिका आकर श्रीकृष्ण तथा रुक्मणी से कहा–

'सुनो, मैं एक आनन्द की बात कहता हूँ – तुम प्रद्युम्न का शोक छोड़ो, क्योंकि वह कुशल है और सोलहवें वर्ष में महान वैभवसहित

लौटकर आपसे मिलेगा। मैं यहाँ से विदेहक्षेत्र में स्वयंप्रभ तीर्थंकर के समवसरण में गया था। अहा, वहाँ की आश्चर्यकारी शोभा का क्या कहना ! वहाँ तीर्थंकर परमात्मा के साक्षात् दर्शन से मुझे अति आनन्द हुआ और मैंने प्रद्युम्न की बात पूछी। उसके पूर्वभव का वैरी उसका अपहरण करके ले गया था, और इस समय एक विद्याधर के यहाँ पुत्ररूप में उसका लालन-पालन हो रहा है। सोलहवें वर्ष में जब वह यहाँ लौटेगा तब अनेक शुभचिह्न दृष्टिगोचर होंगे – सूखे सरोवर जल से छलक उठेंगे, उनमें कमल खिल जायेंगे, मोर नाचने लगेंगे, बिना ऋतु के आम्रवृक्ष फलित होंगे और रुक्मणी के स्तनों से दूध बहने लगेगा। वह पुत्र इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा – ऐसा मैंने प्रभु की वाणी में सुना है।'

वाह, स्वयंप्रभ तीर्थंकर की धर्मसभा में नारदजी द्वारा सुनी गई अपने पुत्र की बात सुनकर श्रीकृष्ण तथा रुक्मणी को अतीव प्रसन्नता हुई, उनका शोक मिट गया और वे चातक की भाँति प्रद्युम्न के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

इधर प्रद्युम्नकुमार कालसंवर के यहाँ कनकमाला माता की गोद में जो उसी की पूर्वभव में पत्नि चन्द्राभा थी, बड़ा होकर अपने पुण्य के प्रभाव से आश्चर्यकारी साहस द्वारा देवों को हराकर सोलह दैवी विद्यायें प्राप्त करता है और सोलह वर्ष के सुन्दर नव यौवन में प्रवेश करने पर पूर्व संस्कार वश माता कनकमाला को पुत्र के प्रति कामवासना जागृत होती है। उसने अपनी महत्त्वपूर्ण प्रज्ञप्ति विद्या उन्हें दे दी; परन्तु धीर-गम्भीर प्रद्युम्नकुमार शीलव्रत में अडिग रहे। इससे कुपित होकर रानी कनकमाला ने उन पर कुशील का झूठा आरोप लगाकर राजा को भड़काया।

राजा ने उन्हें मार डालने का काम अपने पाँच सौ पुत्रों को सौंपा; परन्तु वे किसीप्रकार प्रद्युम्न को नहीं मार सके। चरमशरीरी को भला कौन मार सकता है ? उल्टे उन्हें दिव्य विभूतियाँ ही प्राप्त हुईं। इस कारण उन्हें

पिता कालसंवर और उनके पुत्रों के साथ प्रद्युम्न का युद्ध होता है, वह सबको हरा देता है।

उसी समय वहाँ नारद[१] आ जाते हैं और प्रद्युम्न से कहते हैं कि "तू कृष्ण-रुक्मणी का पुत्र है, कनकमाला और कालसंवर तेरे माता-पिता नहीं हैं। तेरा हरण होने से तू यहाँ बड़ा हुआ है – इत्यादि सारा वृतान्त उसे बताते हैं।" उन्होंने द्वारिका की भी वर्तमान स्थिति सुनाई। उनके काका नेमिनाथ प्रभु वहाँ विराजमान हैं वह भी बतलाया। इससे वह माता-पिता के पास द्वारिका जाने हेतु तत्पर होता है। वह विद्याधर माता-पिता से क्षमा याचना करके द्वारिका जाने की आज्ञा लेता है।

तत्पश्चात् दिव्य वैभव सहित ठाठ-बाट सहित वे द्वारिका आये।

---

१. शोर्यपुर में सुमित्रा नामक तापस की स्त्री सोमयशा (चंद्रकान्ति) का पुत्र था। एकदिन बालक को एक पेड़ के नीचे सुलाकर दोनों भिक्षा लेने हेतु नगर में चले गये। तब पूर्वभव के स्नेहवश एक जृम्भकदेव उस बालक को उठाकर वैताढ्य पर्वत पर ले गया, वहाँ उसने बालक का भलीभाँति पालन-पोषण किया। आठ वर्ष की अवस्था में उसे जिनागम का ज्ञान कराया और आकाशगामिनी विद्या प्रदान कर दी। यही बालक आगे चलकर नारद नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि नारद बालब्रह्मचारी और देशव्रती होते हैं, पर उनका स्वभाव कौतुहली होता है। विनोदप्रिय होने से अपना और दूसरों का मनोरंजन किया करते थे। पर स्वाभिमानी कुछ अधिक ही थे – इस कारण अचित मान-सम्मान न मिलने पर असंतुष्ट हो जाते थे और बदले की भावना से प्रतिक्रिया करने से भी नहीं चूकते थे, जैसा कि उन्होंने सत्यभामा के साथ किया था। नारद का पर्यायगत स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि वे एक-दूसरे को लड़ाने-भिड़ाने और दुखी करने में ही मजा मरनते थे, वे कुछ न कुछ उठा-पटक करने में ही आनन्द मानते थे। भले ही इस भव से वे नरक जाते हों, पर भविष्य में नियम से मोक्षगामी होते हैं। नारद के जीवन से हमें यह शिक्षा लेना चाहिए कि "**हम अपने औदयिक भावों के कारण अपने को हीन अनुभव न करें। पर उसीसमय अपने परमपारिणामिक भाव को ध्यान का ध्येय बनाकर मुक्तिमार्ग को प्रशस्त करें।**"

वहाँ आकर उन्होंने बन्दर, सिंह आदि के रूप धारण करके सत्यभामा और बलभद्र आदि को खूब रिझाया, चित्र-विचित्र चेष्टाओं द्वारा नगरजनों को भी प्रमुदित किया; फिर एक ब्रह्मचारी श्रावक का रूप धारण करके रुक्मणी के महल में पहुँचे। वहाँ रुक्मणी ने उन्हें धर्मात्मा जानकर आदरपूर्वक भोजन कराया। भोजन के पश्चात् वे बोले –

"हे माता ! आप सम्यग्दर्शनधारी एवं साधर्मी के प्रति वात्सल्य दर्शानेवाली हो।"

उससमय राजभवन में अनेक शुभचिह्न प्रकट हुए। अचानक ही फल-फूल खिल उठे, मोर आनन्द से नाचने लगे, आम्रवृक्ष फलों से लद गये और रुक्मणी के स्तनों से दूध झरने लगा। इसप्रकार पुत्र-आगमन के सर्वचिह्न देखे, परन्तु प्रद्युम्न तो कहीं दिखायी नहीं दिया, तब आशंका से रुक्मणी ने पूछा – हे ब्रह्मचारी महाराज ! मेरे पुत्र के आगमन पर जो चिह्न भगवान ने नारदजी से कहे थे, वे सब यहाँ प्रकट दृष्टिगोचर हो रहे हैं; परन्तु मेरा पुत्र दिखायी नहीं देता।

आपको देखकर मेरे हृदय में वात्सल्य उमड़ रहा है, तो क्या आप ही मेरे पुत्र हैं ? यह सुनते ही प्रद्युम्न ने अपना यथार्थ दिव्यरूप धारण किया और हर्षपूर्वक नमन करते हुए बोले – 'हे माता ! मैं ही आपका पुत्र प्रद्युम्न हूँ, मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ। उनके मीठे वचन सुनकर तथा दिव्यरूप देखकर माता ने अत्यन्त हर्षपूर्वक उन्हें गले से लगा लिया। विद्या द्वारा अनेक आश्चर्य करके द्वारिका के लोगों को मुग्ध करता हुआ माता रुक्मणी आदि से मिलता है। अपनी बाल्यक्रीड़ा का विशेष आनन्द देने के लिये प्रद्युम्नकुमार ने विक्रियालब्धि द्वारा बचपन से अब तक की सर्व चेष्टायें प्रदर्शित कीं और बालपुत्र को गोद में लेने का लाभ प्राप्त करके माता रुक्मणी सन्तुष्ट हुई।

मुमुक्षु को मोक्ष की कथा सुनकर जो आनन्द होता है, आत्मार्थी

को आत्मा की अनुभूति से जो सन्तुष्टि होती है, वैसा ही आनन्द और वैसी ही सन्तुष्टि पुत्र मिलन से माता रुक्मणी को हुई।

पूर्वभव में जो प्रद्युम्न का भाई था और स्वर्गलोक में भी उनके साथ था, वह जीव वहाँ से चयकर श्रीकृष्ण के पुत्ररूप में जाम्बुवती की कुक्षि से अवतरित हुआ; उसका नाम शम्बुकुमार है, वह भी चरमशरीरी है।

भगवान नेमिनाथ ने विहार करके देश-देशान्तर में वीतरागी मोक्षमार्ग का उपदेश दिया और लाखों-करोड़ों जीवों को धर्मरथ में बैठाकर मोक्षमार्ग में गमन कराया। प्रभु ने तीर्थंकररूप में रहकर भरतक्षेत्र में ७०० वर्ष तक धर्मचक्र चलाया। अनेक वर्षों पश्चात् नेमिप्रभु जब पुन: गिरनार पधारे, तब अति हर्षपूर्वक दर्शन करके सबने उनका दिव्योपदेश सुना। यथासमय प्रद्युम्नकुमार-शम्बुकुमार आदि को भी वैराग्य हुआ और उन्होंने आत्मज्ञान सहित धर्मसाधना में अपना चित्त स्थिर किया। राज्यादि समस्त बहिरंग और अन्तरंग परिग्रह त्याग कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके उग्र पुरुषार्थ द्वारा क्षपकश्रेणी मांडकर केवलज्ञान लक्ष्मी का वरण करते हैं और आयु पूर्ण होने पर अनन्त अव्याबाध सुख स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने अपनी आठ मुख्य रानियों – १. सत्यभामा २. रुक्मणी ३. जाम्बुवती ४. सुसीमा ५. लक्ष्मणा ६. गांधारी ७. गौरी तथा ८. पद्मावती के पूर्वभव पूछे।

तब गणधरदेव ने प्रथम **सत्यभामा के पूर्वभव** कहे – शीतलनाथ प्रभु के तीर्थ में यह जीव मथुरा राज्य की शौरीपुर नगरी में एक अधम विद्वान था; तब जैनधर्म की निन्दा करने तथा विषय-कषायपोषक कुधर्म का उपदेश देने से वह सातवें नरक में गया और अनेक निचले भवों में परिभ्रमण किया। पश्चात् भील के भव में उसने एक मुनिराज के उपदेश में मद्य, मांस, मदिरा, अण्डा, शहद आदि का त्याग किया और मरकर राजपुत्र हुआ; वहाँ भी आत्मज्ञान के बिना व्रत धारण करके शुभ परिणाम

से देव हुआ और वहाँ से चयकर यहाँ तुम्हारी (श्रीकृष्ण की) पटरानी सत्यभामा के रूप में अवतरित हुआ है। अब भगवान नेमिनाथ के शासन में धर्म प्राप्त करके वह स्त्रीपर्याय का छेद करेगा और अनुक्रम से मोक्ष प्राप्त करेगा।

इसीप्रकार दूसरी सातों रानियों ने भी पूर्वभव में धर्म की कैसी विराधना की थी और फिर मुनिवरों को आहार दान, व्रतादि से धर्म के संस्कार प्राप्त किये; परन्तु अभी तक आत्मज्ञान नहीं किया होने से स्त्रीपर्याय में अवतरित हुईं; अब वे नेमिप्रभु के शासन में धर्म प्राप्त करके अपना कल्याण करेंगी। – यह बात गणधर ने बतलायी।

इसप्रकार गणधरदेव के मुख से अपने पूर्वभव सुनकर तथा स्वयं निकट भविष्य में मोक्षगामी होना जानकर वे सब रानियाँ अति प्रसन्न हुईं और अभी तक आत्मज्ञान के बिना ही ऐसी नीच स्त्रीपर्याय में भटकतीं रहीं – ऐसा विचारकर, उन्होंने श्रीकृष्ण की आठों रानियों ने अपना चित्त धर्म में लगाया, वैराग्यपूर्वक जैनधर्म में अपनी बुद्धि लगायी और भक्तिसहित नेमिप्रभु के चरणों में चित्त लगाया। धर्मरहित मूर्ख जीवों का जीवन निन्दनीय तथा धर्मसहित जीव ही प्रशंसनीय है, – ऐसा समझकर अनेक जीवों ने अपना चित्त धर्म में लगाया और पाप प्रवृत्ति छोड़ दी।

सत्यभामा आदि ने भी अपने पूर्व भवों की कथा सुनकर, संसार से उदास हो अपना चित्त धर्मसाधन में लगाया।

अंतकृत केवली गजकुमार : दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष

श्रीकृष्ण ने अनेक राजकन्याओं के साथ-साथ सोमिल सेठ की पुत्री सोमा के साथ भी अपने लघु भ्राता गजकुमार के विवाह की तैयारी की थी। इसी समय विहार करते-करते श्री नेमिनाथ तीर्थंकर का समवशरण द्वारिका नगरी आया। जिनराज के पधारने से सभी उनके दर्शन के लिए गये। नेमिप्रभु को देखते ही गजकुमार को उत्तम भाव जागा –

प्रभु को देखकर उन्हें ऐसा लगा कि – अहो, यह तो मेरे भ्राता हैं तथा मुझे मोक्ष ले जाने के लिये ही पधारे हैं। प्रभु के श्रीमुख से उन्होंने तीर्थंकरादि महापुरुषों का चरित्र तथा मोक्षपुरुषार्थ का वर्णन सुना। सुनते ही उनका आत्मा मोक्षपुरुषार्थ हेतु जागृत हो उठा। अहा, यह तो नेमिप्रभु की वाणी! विवाह के समय ही वैराग्य प्राप्त करनेवाले उन प्रभु की वीतरागरस झरती वाणी में संसार की असारता और मोक्ष की परम महिमा सुनकर

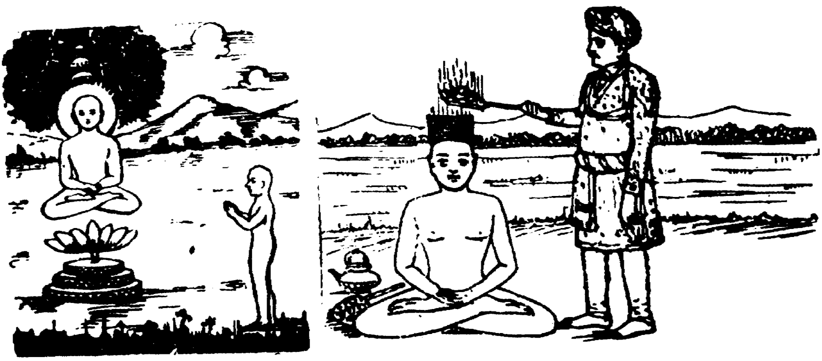

गजसुकुमार का हृदय वैराग्य से झंकृत हो उठा। तुरन्त ही उन्होंने प्रभुचरणों में जिनदीक्षा अंगीकार की और महान पराक्रमपूर्वक श्मशान में जाकर आत्मध्यान में लीन हो गये।

इतने में क्रूर परिणामी सोमिल सेठ वहाँ आ पहुँचा। गजसुकुमार मुनि को देखते ही 'इस दुष्ट ने मेरी कन्या सोमा को अविवाहित रखा और मुझे भी दुखी किया' – ऐसा वैरभाव उसके मन में जागृत हो उठा और उसने गजसुकुमार मुनि पर घोर उपसर्ग किया। उनके सिर पर मिट्टी की सिगड़ी बनाई और उसमें अग्नि जलाई, तब श्री गजसुकुमार विचारते हैं कि अरे मुक्ति सुन्दरी के वरण हेतु भी यहाँ मुझे सेहरा बाँधने वाला यह मेरा उपकारी महापुरुष धन्य है। उनका सिर अग्नि से जलने लगा। बाहर में मस्तक भले ही अग्नि में जल रहा हो, परन्तु अंदर आत्मा तो चैतन्य के परम शांतरस से ओतप्रोत है। शरीर जल रहा है फिर भी आत्मा

स्थिर है; क्योंकि दोनों के बीच भेदज्ञान की वज्र की दीवार जो खड़ी कर रखी है उन्होंने। – ऐसे महापराक्रमी, गजसुकुमार मुनि भयंकर उपसर्ग के बीच शान्ति के पर्वत की भाँति ध्यान में अडिग रहे और शुक्लध्यान की श्रेणी द्वारा केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष प्राप्त किया। सही है – **"क्रोध के उदय से यह जीव दूसरों का बुरा करना चाहे, परन्तु बुरा होना उसके भवितव्य के आधीन है।"**

इसप्रकार नेमिनाथ प्रभु के तीर्थ में वे 'अंतकृत' केवली हुए। उनका केवलज्ञान तथा निर्वाण – दोनों महोत्सव देवों ने एकसाथ किये।

आत्मसाधना में गजसुकुमार मुनि के इस प्रचण्ड पुरुषार्थ की घटना से आज भी साधक जीव चैतन्य के पुरुषार्थ की प्रेरणा लेते है और मोक्ष के अडोल साधक के प्रति हृदय से विनत हो जाते हैं। अहा, जिन्हें पुरुषार्थ द्वारा आत्मसाधना करना है, उन्हें जगत की कोई घटनायें रोक नहीं सकतीं।

अहा ! मुनिराजों का कोई अलौकिक स्वरूप होता है। बाहर में उन मुनिराज का शरीर बाणों से भेदा जा रहा हो, परन्तु वे अंदर आत्मा को मोह-बाण नहीं लगने देते थे। बाहर में शरीर में कीलें ठोक-ठोककर चलनी जैसा बना दिया; परन्तु वे अंदर आत्मा में वीतरागता की चलनी से कर्मों को छान कर अलग कर रहे होते हैं। वे गंभीर मुनिराज तो स्वरूप की मस्ती में मस्त, अडोल प्रतिमायोग धारण किये हुए समाधिस्थ रहते हैं। जड़ और चेतन के भेदविज्ञान द्वारा चैतन्य की शांति में स्थित होकर घोर परिषह सहन करनेवाले मुनिराज, अत्यन्त शूरवीर होते हैं।

राजपुत्र गजसुकुमार की दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष की बात सुनकर तुरन्त समुद्रविजय महाराजा (नेमिप्रभु के पिताश्री) आदि नवों भाईयों ने (वसुदेव के अतिरिक्त) संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा लेकर मोक्ष की साधना की। मातुश्री शिवादेवी आदि ने भी आर्यिका पद अंगीकार

किया और राजमती के संघ में रहने लगीं। राजमती, शिवादेवी आदि आर्यिकाओं ने अद्भुत वैराग्यमय जीवन जीकर नेमिप्रभु के मार्ग का अनुसरण किया और स्त्रीपर्याय का छेद करके स्वर्ग में देव पर्याय प्राप्त की; वहाँ से निकलकर एक भव में मोक्ष प्राप्त करेंगीं।

द्वारिकापुरी का दहन

प्रभु नेमिनाथ तो वीतरागरूप से भारत में विहार करते हुए पुनः पुनः गिरनार पधारते हैं। एकबार प्रभु पुनः गिरनार पधारे। इसबार प्रभु का उपदेश सुनकर बलभद्रजी ने अपने भाई श्रीकृष्ण का तथा द्वारिका नगरी का भविष्य पूछा।

'बारह वर्ष पश्चात् द्वीपायन ऋषि एवं मद्य के निमित्त से समस्त द्वारिका नगरी भस्मीभूत हो जायेगी और श्रीकृष्ण की मृत्यु उसके भाई जरतकुमार के हाथ से होगी' – ऐसा प्रभु की वाणी में आया। यह सुनकर अनेक जीवों ने वैराग्य प्राप्त करके दीक्षा ग्रहण कर ली। श्रीकृष्ण महाराज ने द्वारिका नगरी में घोषणा करायी कि मेरे पिता, माता, भगिनी, पुत्रादि परिजन तथा समस्त नगरवासी सब वैराग्यपूर्वक संयम धारण करके शीघ्र आत्मकल्याण करो! मैं किसी को रोकूँगा नहीं। मैं स्वयं व्रत धारण नहीं कर सकता, परन्तु जो भी व्रत-दीक्षा लेंगे उनके परिवार के पालन का सम्पूर्ण भार मैं लूँगा। इसलिए द्वारिका नगरी भस्म हो जाय उससे पूर्व जिन्हें अपना कल्याण करना हो वे कर लें, उसमें मेरी अनुमोदना है।

जैसा कि हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि द्वारिका का भविष्य तथा श्रीकृष्ण की धर्म घोषणा सुनकर उनके पुत्र प्रद्युम्नकुमार, शम्बुकुमार, भानुकुमार, अनिरुद्धकुमार आदि चरमशरीरी राजपुत्रों ने तुरन्त नेमिप्रभु के निकट जाकर जिनदीक्षा ले ली और गिरनार की दूसरी, तीसरी, चौथी टूँक से मोक्षपद प्राप्त किया। श्रीकृष्ण की सत्यभामा, जाम्बुवती, रुक्मिणी आदि आठों पटरानियों ने तथा अन्य हजारों रानियों ने भी श्री नेमिप्रभु के

समवसरण में जाकर आर्यिका-व्रत धारण किये। अनेक नगरजनों तथा सिद्धार्थ नामक सेनापति ने भी जिनदीक्षा धारण की और वे सिद्धार्थ मुनिराज समाधिमरण करके स्वर्ग में देव हुए।

प्रश्न :– द्वारिका तो जैनधर्मियों की नगरी थी, महा दया धर्म से भरी हुई थी , वहाँ मद्य का क्या काम ? जहाँ नेमिप्रभु रहे हैं और जहाँ बलदेव-वासुदेव का राज्य हो, वहाँ शराब की बात कैसी?

उत्तर :– कर्मभूमि होने से कोई पापी जीव गुप्तरूप से कभी मद्यादि का सेवन करता हो – ऐसा विचार कर वासुदेव ने द्वारिका नगरी में घोषणा कर दी कि कोई अपने घर में मद्यपान की सामग्री नहीं रखेगा, जिसके पास हो वह शीघ्र नगर के बाहर फेंक दे। ऐसा सुनकर जिसके पास मद्य-सामग्री थी, उन्होंने कदंब वन में उसे फेंक दी और वहाँ वह सूखने लगी।

उधर द्वीपायन मुनि (बलभद्र के मामा) जो दूर देशान्तर चले गए, वे ठीक बारह वर्ष पूर्ण होने से पूर्व 'बारह वर्ष हो चुके हैं' – ऐसा समझकर, (जबकि बारह वर्ष में एक माह बढ़ जाता है – वे यह बात भूल गये – जो-जो देखी वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे....) वे द्वारिका के उद्यान में आ गये। यादव कुमारों ने उन्हें देखा, और 'यह द्वारिका जलानेवाला आया' – ऐसा कहकर पत्थर आदि मार कर तथा भला-बुरा कहकर उनका खूब अपमान किया।

इससे क्रोधित होकर वे द्वीपायन ऋषि सम्पूर्ण द्वारिका नगरी को भस्म करने के लिये उद्यत हुए। **रे होनहार ! मुनिभाव से भ्रष्ट हुए वे द्वीपायन क्रोधपूर्वक तेजोलेश्या द्वारा द्वारिका को जलाने लगे।** (दूसरे पुराण में ऐसा भी आता है कि द्वीपायन ने अशुभ निदान किया और मरकर अग्निकुमार देव हुए, पश्चात् द्वारिका नगरी को भस्म किया।) नगरी के पशु तथा मनुष्य अग्नि में धू-धू करके जलने लगे। बचाओ.... बचाओ.... का करुण विलाप करने लगे। श्रीकृष्ण की द्वारिका में ऐसा करुण क्रन्दन कभी

हुआ नहीं था। देवों द्वारा रचित द्वारिका नगरी छह मास तक अग्नि में जलती रही और सम्पूर्ण द्वारिका नष्ट हो गई।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि अरे, यह महान वैभवसम्पन्न द्वारिकापुरी, जिसकी रचना देवों ने की थी, जिसके स्वामी स्वयं नारायण कृष्ण थे। कहाँ गये वे देव ? और कहाँ गया उन वासुदेव कृष्ण का पुण्य ?

उसका समाधान – हे भाई ! सर्वज्ञ भगवान की देखी हुई भवितव्यता दुर्निवार है, उसे कोई रोक नहीं सकता। जब ऐसी होनहार हुई तब देव भी दूर हो गये। **पुण्य का संयोग वासुदेव जैसों को भी कहाँ स्थिर रहता है ? वह तो अस्थिर, क्षणभंगुर और अशरण है।**

अपनी आँखों के सामने धू-धूकर जलती हुई द्वारिका नगरी को देखकर दोनों भाई एकदम आकुल-व्याकुल हो गये। यद्यपि दोनों आत्मज्ञानी थे, जानते थे कि द्वारिका आदि इन सर्व परद्रव्यों में से कोई भी हमारा नहीं है; हम तो सबसे भिन्न चेतन स्वरूप हैं; तथापि व्याकुल होकर कहने लगे – अरे, हमारे महल और रानियाँ जल रही हैं, माता-पिता जल रहे हैं, कोई तो बचाओ रे.... ! परन्तु सर्वज्ञ के देखे हुए भवितव्य के सामने तथा द्वीपायन ऋषि के क्रोध के समक्ष देव भी क्या करते ? आयु समाप्त होने पर इन्द्र-नरेन्द्र या जिनेन्द्र कोई भी जीव को बचा नहीं सकते। एक अपना आत्मा ही शरणभूत है।

आग बुझाने का कोई साधन दिखायी नहीं दिया, तब श्रीकृष्ण और बलभद्र ने नगरी का गढ़ तोड़कर समुद्र के जल से अग्नि बुझाने का प्रयत्न किया। परन्तु रे दैव ! वह जल भी तेल जैसा होने लगा, उससे और अधिक आग बढ़ने लगी। अन्त में आग को बुझाना असंभव जानकर वे दोनों भाई माता-पिता को बाहर निकालने का उद्यम करने लगे। माता-पिता को रथ में बैठाकर घोड़े जोत दिये, परन्तु वे नहीं चले; हाथी जोते, वे भी रथ को नहीं खींच सके; मानो रथ के पहिये पृथ्वी में चिपक

गये हों। अन्त में, 'हाथी-घोड़ों से यह रथ नहीं चलेगा' – ऐसा देखकर श्रीकृष्ण और बलभद्र दोनों योद्धा समान रथ में जुत गये और शक्ति लगाकर खींचने लगे; हजार-हजार सिंहों का बल रखनेवाले उन बलदेव-वासुदेव से भी वह रथ नहीं चला, सो नहीं चला; वह तो वहीं का वहीं गड़ गया। जब बलदेव-वासुदेव रथ को बाहर खींचने के लिये शक्ति लगाने लगे, तब नगरी के द्वार अपने आप बन्द हो गये। दोनों भाइयों ने लातें मार-मारकर द्वार तोड़ने की कोशिश की, उसीसमय आकाश से देववाणी हुई कि – "मात्र तुम दोनों भाई ही द्वारिका से जीवित निकल सकोगे, तीसरा कोई नहीं। माता-पिता को भी तुम नहीं बचा सकोगे।"

अरे, अशरण संसार ! श्रीकृष्ण-बलभद्र माता-पिता को असहाय छोड़कर रुदन करते-करते द्वारिका के बाहर निकले। बाहर निकलकर द्वारिका नगरी की ओर देखा तो क्या देखा ? कि सुवर्ण एवं रत्नमयी द्वारिका नगरी घास की भाँति भड़-भड़ जल रही है, घर-घर में आग लगी है, राजमहल भस्म हो चुके हैं।

दोनों भाई एक-दूसरे के गले लगकर रोने लगे। अब कहाँ चला जाये वह सोचने लगे। अन्त में, दक्षिण देश में पाण्डवों के पास जाने का निर्णय करके उस ओर चलने लगे।

द्वारिका नगरी छह मास तक सुलगती रही। तब जो तद्भव मोक्षगामी थे अथवा जिन्हें संयम धारण करने का भाव था, ऐसे जीवों को तो देव, नेमिनाथ प्रभु के निकट ले गये; जो सम्यग्दृष्टि थे, धर्म संस्कारों से युक्त थे, उन्होंने अन्त समय जानकर प्रायोपगमन संन्यास धारण कर लिया; अग्नि का घोर उपसर्ग भी उन्हें आर्त्तध्यान का कारण नहीं हुआ। जो सच्चे जिनधर्मी हैं वे मृत्युकाल में भी कायर नहीं होते, बल्कि धर्मसाधना में शूरवीर होते हैं। वे शरीर को त्याग देते हैं परन्तु धर्म का त्याग नहीं करते। यह जैन सन्तों की रीति है।

अरे रे, द्वीपायन ने जिनवचन की श्रद्धा छोड़कर अपना भव बिगाड़ा और अनेक जीवों की मृत्यु का कारण बने। धिक्कार है ऐसे क्रोध को जो स्व-पर का नाश करके संसार की वृद्धि करता है। और देखो तो सही इस संसार की स्थिति ! द्वारिका जल रही थी तब श्रीकृष्ण का सुदर्शन चक्र भी क्या काम आया ? कहाँ गये वे सब देव ? मात्र दश प्राण ही अब जिनका परिवार बचा हो, ऐसे वे दोनों भाई पाण्डवों के पास जाने को चले। तिरस्कार करके स्वयं ही जिन्हें राज्य से निकाल दिया था, उन्हीं की शरण में जाने का समय आया। ऐसा असार संसार ! उसमें पुण्य-पाप के विचित्र खेल देखकर हे जीव ! तू पाप के उदय में घबराना नहीं और पुण्य के भरोसे बैठे मत रहना; दोनों से निरपेक्ष रहकर शीघ्र आत्महित साधना; क्योंकि –

हर्ष-शोक से पार है, ऐसा ज्ञानस्वभाव;
उस स्वभाव को साध तो, सच्ची शान्ति लहाव।
संयोग और वियोग में, अरु सुख में या दुःख में,
संसार में या मोक्ष में, रे जीव ! तू तो है अकेला।।

द्वारिका नगरी भले ही भस्म हो गई, परन्तु उसमें धर्मात्मा जीवों की शान्ति नहीं झुलसी, वह तो अग्नि से तथा राग से भी अलिप्त शान्त चैतन्य रस में सराबोर थी। धन्य है ज्ञानी की चेतना !

श्रीकृष्ण की मृत्यु और पाण्डवों का वैराग्य

द्वारिका नगरी को जलता छोड़कर श्रीकृष्ण-बलभद्र दक्षिण देश की ओर जा रहे थे। वहाँ कौशाम्बी का भयंकर वन आया। वहाँ मृगजल तो बहुत दिखता था, परन्तु कहीं सच्चा जल मिलना दुर्लभ था। थके हुए श्रीकृष्ण को तीव्र प्यास लगी थी। उन्होंने बलभद्र से कहा – हे बन्धु! पानी के बिना मेरे प्राण कण्ठ तक आ गये हैं; **जिसप्रकार संसार दुःख से संतप्त प्राणियों का भवाताप सम्यग्दर्शन रूपी जल से मिट जाता**

है, उसीप्रकार आप मुझे शीतल जल लाकर दो, जिससे मेरी तृषा शान्त हो और प्राण बचें।

बलभद्र दु:खी होकर अत्यन्त स्नेह से कहते हैं – "हे हरि ! हे भ्रात ! हे तीन खण्ड के रक्षक! मैं तुम्हारे लिए ठण्डा पानी लाता हूँ।.... तब तक **तुम जिनेन्द्र भगवान के स्मरण के द्वारा अपनी तृषा शांत करो। तुम तो जिनवाणी रूपी अमृतपान के द्वारा सदा तृप्त रहो।** इस पानी से थोड़े ही समय तक प्यास बुझती है और फिर प्यास लगने लगती है, अरे ! **जिनवचन रूपी अमृत तो सदाकाल के लिए विषय-तृष्णा को मूल से ही मिटा देता है।** हे जिनशासन के वेत्ता! तुम इस बट-वृक्ष की शीतल छाया में आराम करो, मैं शीघ्र ही पानी लाता हूँ। **तुम चित्त को शीतल करके शान्तभाव रूप निज भवन में जिनेश्वर की स्थापना करो।**"

पानी खोजते हुए वे दूर तक चले गये। इधर थके हुए हताश एवं प्यासे श्रीकृष्ण अपना दुपट्टा ओढ़े पैर पर पैर चढ़ाकर वृक्ष की छाया में सो गये और उन्हें निद्रा आ गई। उसीसमय सनसनाता हुआ एक तीर आया और सीधा श्रीकृष्ण के पैर में लगा। कौन था वह बाण चलानेवाला?

यह था उन्हीं का भाई जरतकुमार ! एक भाई तो प्राण बचाने के लिये पानी लेने गया है और दूसरे भाई ने बाण मारकर उनके प्राण हर लिये। भाई के हाथ से भाई का प्राणान्त हुआ। यद्यपि उसकी इच्छा श्रीकृष्ण को मारने की नहीं थी; उल्टे वह तो इसी भावना से १२ वर्ष से वन में भटक रहा था कि उसके हाथ से श्रीकृष्ण की मृत्यु न हो; परन्तु होनहार को कौन टाल सकता है ? श्रीकृष्ण के वस्त्र का एक सिरा हवा में उड़ रहा था, उसे खरगोश का कान समझकर जरतकुमार ने बाण छोड़ा और उस बाण से उनके भाई श्रीकृष्ण बिन्ध गये।

मनुष्य की आवाज सुनकर जरतकुमार वहाँ आये और श्रीकृष्ण को

देखकर बहुत दुखी हुए। फिर तो उन्हें बहुत पश्चाताप हुआ; उनने धनुष-बाण फेंक दिये, शिकार करना छोड़ दिया और द्वारिका भस्म हो गई तथा श्रीकृष्ण मृत्यु को प्राप्त हुए, वह जरतकुमार यह समाचार देने के लिये वह पाण्डवों के पास चल दिया।

राजा-राणा-छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥

अरे, कहाँ तीन खण्ड का वैभव ! और कहाँ निर्जन वन में प्यासे ही मृत्यु ? पुण्य के समय सेवा करनेवाले हजारों देवों में से कोई देव उन प्यासे नारायण को पानी पिलाने भी नहीं आया ! संयोग का क्या भरोसा ? अर्थात् संयोग भी कोई भरोसा करने लायक है क्या ? कभी नहीं।

दूसरी ओर पानी लेने गये बलभद्र पानी लेकर जल्दी-जल्दी आये और कहने लगे – अरे भैया कृष्ण ! तुम्हें निद्रा आ गई ? उठो, मैं जल लेकर आ गया हूँ, उसे पीकर अपनी तृषा शान्त करो।

परन्तु कौन उठता और कौन बोलता ? कौन पानी पीता? अत्यन्त भ्रातृस्नेह के कारण बलभद्र श्रीकृष्ण की मृत्यु स्वीकार करने को तैयार नहीं हुए; वे श्रीकृष्ण के मृतशरीर को कन्धे पर लेकर घूमते रहे और छह मास तक अत्यन्त शोकमग्न रहे। **आत्मज्ञानी होने पर भी मात्र चारित्र मोह के कारण यह दशा हुई। तब फिर दर्शनमोह (मिथ्यात्व) से ग्रसित जीवों की क्या कथा ?**

अन्त में उनके सारथी सिद्धार्थ (जो कि मरकर देव हुआ था) ने आकर सम्बोधन किया कि हे महाराज ! जिसप्रकार रेत में से तेल नहीं निकलता, पत्थर पर धान नहीं उगता और मरा हुआ बैल घास नहीं खाता, उसीप्रकार मरा हुआ मनुष्य पुन: जीवित नहीं होता। आप तो ज्ञानी हो, इसलिए श्रीकृष्ण का मोह छोड़ो और संयम धारण करो।

सिद्धार्थ देव के सम्बोधन से बलभद्र का चित्त शान्त हुआ और

संसार से विरक्त होकर उन्होंने जिनदीक्षा धारण की और आराधना पूर्वक समाधिमरण करके वे स्वर्ग में गये।

श्री नेमिनाथ प्रभु के शासन में (अन्तिम) नौवें श्रीकृष्ण-नारायण, बलभद्र और जरासंध प्रतिनारायण हुए।

उधर दक्षिण देश में पाण्डवों ने जरतकुमार के मुँह से द्वारिका नगरी के विनाश तथा श्रीकृष्ण की मृत्यु के समाचार सुने, सुनते ही वे शोकमग्न हो गये। फिर उन्होंने द्वारिका नगरी की नवरचना की और जरतकुमार को राज-सिंहासन पर बैठाया। परन्तु यह देखकर कि कहाँ नेमि तीर्थंकर और श्रीकृष्ण के समय की द्वारिका और कहाँ यह द्वारिका !....वे पाण्डव वैराग्य से चिन्तवन करने लगे कि अरे, समुद्र के बीच देवों द्वारा निर्मित द्वारिका नगरी भी जलकर भस्म हो गई। जहाँ श्रीकृष्ण राज्य करते थे, जहाँ की राजसभा में नेमिकुमार विराजते थे और दिन-प्रतिदिन मंगल उत्सव होते थे, वह नगरी आज सुनसान हो गई।

कहाँ गये वे राजमहल ? कहाँ हैं वे राजवैभव ? और कहाँ चले गये उनका उपभोग करनेवाले ? नदी के प्रवाह जैसे चंचल-विषयों को स्थिर नहीं रखा जा सकता। विषयों की ऐसी नश्वरता देखकर विवेकीजन उससे विरक्त होते हैं और वीतरागी होकर आत्महित की साधना करते हैं। इसप्रकार संसार से विरक्त होकर वे पाण्डव पल्लव देश में विराजमान श्री नेमिनाथ प्रभु के पास गये। प्रभु के दर्शनों से उनका चित्त शान्त हुआ। प्रभु के केवलज्ञान की अत्यन्त महिमा करके स्तुति की और प्रभु के उपदेश में चिदानन्द तत्त्व की, स्वानुभूति की तथा मोक्षसुख की परम महिमा सुनकर वे पाण्डव भी मोक्ष साधना हेतु उत्सुक हुए।

वे विचारने लगे – **''अरे रे, नेमिनाथ प्रभु जैसे तीर्थंकर का साक्षात् सुयोग होने पर भी अब तक हम असंयमी रहे और तुच्छ राजभोगों के लिये बड़े-बड़े युद्ध किये।**

अरे ! जहाँ श्रीकृष्ण जैसे अर्धचक्री राजा का राज्य भी स्थिर नहीं रहा, द्वारिका नगरी भी देखते-देखते भस्म हो गई और श्रीकृष्ण जैसे अर्धचक्री महाराज जल के बिना मृत्यु को प्राप्त हुए; ऐसे महापुरुषों को भी जब पुण्य शरणभूत नहीं हुआ, वहाँ दूसरों की क्या बात ? पुण्य और संयोग तो अध्रुव एवं अशरण हैं; मात्र रत्नत्रय धर्म ही जीव को शरणभूत है।''

इसप्रकार जिनका चित्त जिनदीक्षा हेतु तत्पर हुआ है ऐसे उन पाण्डवों ने श्री नेमिनाथ की धर्मसभा में अपने पूर्वभवों का वृत्तान्त सुना –

पाण्डवों व द्रोपदि के पूर्वभव

''युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन ये तीनों भाई पूर्वभव में चंपापुरी में १. सोमदत्त, २. सोमिल और ३. सोमभूति नाम के ब्राह्मण-पुत्र थे – इसी प्रकार नकुल, सहदेव और द्रोपदी – ये तीनों पूर्वभव में १. धनश्री २. मित्रश्री और ३. नागश्री नाम की अग्निभूति ब्राह्मण-पुत्रियाँ थीं। इन तीनों कन्याओं का विवाह उन तीनों भाईयों के साथ हुआ था अर्थात् युधिष्ठिर और नकुल – ये दोनों भाई तथा भीम और सहदेव – ये दोनों भाई पूर्वभव में पति-पत्नि थे। इसी प्रकार अर्जुन और द्रौपदी भी पूर्वभव में पति-पत्नि थे।

एक बार उन तीनों भाईयों के आंगन में धर्मरुचि नामक मुनिराज पधारे.... सबने आदरपूर्वक उन्हें आहारदान दिया.... परन्तु उस समय नागश्री (द्रौपदी के जीव) ने मुनिराज का अनादर किया.... और अयोग्य आहार दिया.... जिससे मुनिराज का समाधिपूर्वक मरण हुआ।

इस प्रसंग को जानकर तीनों भाईयों को अत्यन्त दुख हुआ – ''अरे ! रे !! हमारे आंगन में जिनसदृश मुनिराज का अनादर'' – ऐसा विचारकर उन्होंने वैराग्य धारण करके जिनदीक्षा ले ली और आत्मसाधना करके स्वर्ग गये.... वहाँ से निकलकर यहाँ युधिष्ठिर-भीम-अर्जुन के रूप में मनुष्य जन्म प्राप्त किया है।

उधर उन तीनों भाईयों की पत्नियों में से नागश्री को छोड़कर दोनों पत्नियों ने भी आर्यिका व्रत धारण किया और आत्मसाधना पूर्वक स्वर्ग में गईं.... वहाँ से निकलकर यहाँ सहदेव और नकुल हुए हैं।

नागश्री का जीव (जो अभी द्रौपदी है) मुनि की विराधना के दुष्ट परिणाम के कारण मरकर नरक गया। बाद में दृष्टिविष नामक भयंकर सर्प होकर पुनः नरक गया। बाद में भी बहुत काल तक उसने स्थावर के अनेक भव धारण किये और घोर दुख भोगे। पश्चात् चम्पापुरी में चाण्डल कन्या हुई, पुनः यहीं दुर्गंधी सेठ-पुत्री हुई और फिर उसने सद्भाग्य से एक अन्य कन्या को विवाह मण्डप में ही वैराग्यी होकर दीक्षा लेते देखकर सम्यक्त्व के बिना ही आर्यिका-व्रत धारण किया।

आर्यिका के पद में निदान-बंध करके स्वर्ग गई, फिर द्रौपदि के भव में 'पंचभर्तारी' के नाम से जगत में विख्यात हुई है; परन्तु उसका चित्त वास्तव में अब संसार से उदास होकर धर्म के प्रति जागृत है।

इसप्रकार प्रभु श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर की सभा में अपने पूर्वभवों का वृतान्त सुनकर उन पाँचों पाडण्वों ने प्रभु के सन्मुख जिनदीक्षा धारण की। तभी द्रौपदी, माता कुन्ती और सुभद्रा ने भी राजमती-आर्यिका के पास जाकर दीक्षा ले ली।

उसके बाद विहार करते-करते वे पाण्डव मुनिराज सौराष्ट्र देश में आये.... नेमिनाथ प्रभु की कल्याणक भूमि गिरनार की यात्रा की[१].... तत्पश्चात् वैराग्य भूमि सहस्र आम्रवन में थोड़े दिन रहकर आत्मध्यान की उग्रता के द्वारा वीतरागता की वृद्धि की.... बाद में शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र

---

१. कोई कथाकार ऐसा भी कहते हैं कि पाण्डव मुनिराज नेमिनाथ भगवान के दर्शन करने हेतु शत्रुंजय से गिरनार की ओर विहार कर रहे थे, इतने में उन्होंने नेमिनाथ भगवान के मोक्षगमन की बात सुनी, जिससे वे वैराग्यपूर्वक शत्रुंजय पर्वत पर ही ध्यानस्थ हो गये।

पर आकर निष्कंप आत्मध्यान करने लगे.... अहो! परमेष्ठी पद में झूलते वे पाँचों पाण्डव मुनिराज पंचपरमेष्ठी जैसे ही शोभित हो रहे थे।

शत्रुंजय पर्वत पर मोहशत्रु को जीतने के लिये ध्यान-मग्न पाण्डव मुनि भगवन्तों पर दुर्योधन के भानजे ने अग्नि का घोर उपसर्ग किया। उनके शरीर जल रहे थे, परन्तु उन मुनिवरों ने तो ध्यान द्वारा आत्मा में शान्त जल का सिंचन करके शरीर के साथ-साथ ध्यानाग्नि में कर्मों को भी भस्म कर दिया।

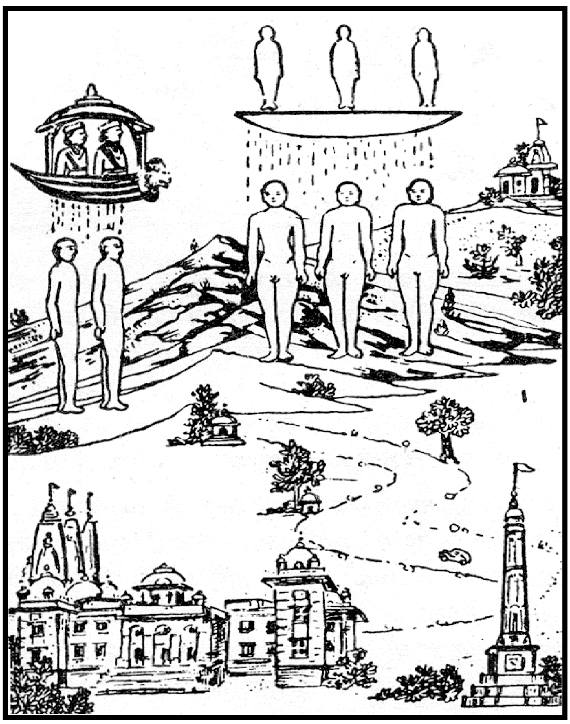

युधिष्ठिर, अर्जुन तथा भीम ने तो उसी समय क्षपक श्रेणी मांडकर केवल्य प्रकट किया, और अन्त: कृत केवली होकर मोक्ष को प्राप्त हुए। उस समय उनके द्वारा बारह भावनाओं का अभूतपूर्व चिंतन किया गया, जिसका सार 'जैनधर्म की कहानियाँ' भाग-३ पढ़ें।

नकुल तथा सहदेव – उन दो मुनिवरों को "धर्मात्मा मुनिवरों पर ऐसा उपसर्ग" (भ्राताओं पर) – ऐसी किंचित् राग की वृत्ति रह गई; इतने मात्र राग के कारण वे मोक्षप्राप्त नहीं कर सके और सर्वार्थसिद्धि में देवलोक का भव हुआ। अगले भव से मोक्ष जाएँगे।

इससे ने करना राग किंचित् कहीं भी मोक्षेच्छु को।
वीतराग हो फिर इस विधि, वह भव्य भवसागर तरे॥

बाईसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ ने धर्मचक्र सहित गगनविहार द्वारा मोक्ष का धर्मरथ चलाते-चलाते अनेक देशों में विहार किया; वैरागी राजकुमार वरांग[१] भी उन्हीं के शासन में हुए।

अन्त में पुनः एकबार नेमिनाथ प्रभु सौराष्ट्र में पधारे। अपने देश के तीर्थंकर परमात्मा के आगमन से सौराष्ट्र की प्रजा धन्य हो गई ! प्रभु पुनः उसी गिरनार गिरि (उर्ज्जयन्तगिरि) पर पधारे, जहाँ उनके दो कल्याणक हुए थे। अब चौदहवें गुणस्थान तथा मोक्षपद की साधना द्वारा पंचम कल्याणक की तैयारी थी।

नेमिनाथ भगवान का निर्वाण

नेमिनाथ भगवान से पूर्व भी करोड़ों मुनिवरों ने गिरनार से मोक्ष प्राप्त किया था, और अब यह बाईसवें तीर्थंकर प्रभु वहाँ से मोक्ष पधार रहे हैं। नेमिनाथ प्रभु के एक हजार वर्ष के आयुबंध में से अब मात्र एक मास ही शेष रहा है। विहार और वाणी थम गये; गिरनार के सर्वोच्च शिखर (पाँचवी टोंक, पंचम कल्याणक की टोंक, मोक्ष की टोंक) पर प्रभु अयोगी हुए। आषाढ़ शुक्ला सप्तमी को समस्त कर्मरहित हुए वे प्रभु गिरनार गिरि के ऊपर सिद्धालय में सिद्ध परमात्मा रूप में स्थित हुए।

आज भी प्रभु वहीं विराज रहे हैं और अनन्तकाल तक उसीप्रकार मोक्षसुख में मग्न रहेंगे। तब से उन सिद्धप्रभु का स्मरण करके गिरनार गिरि की मोक्ष टोंक पर बैठकर आज भी अनेक जीव परमपद की भावना भाते आ रहे हैं।

अपूर्व अवसर ऐसा कब वह आयेगा ?
जब हम भी चलेंगे उन महत्पुरुष के पथ पर।

श्री नेमिप्रभु के मोक्ष पधारने पर इन्द्र मोक्ष का महोत्सव मनाने आये।

एक हजार वर्ष में इन्द्र पाँचवीं बार सौराष्ट्र में आये और तीर्थंकर प्रभु के पंचकल्याणक का महान उत्सव किया। गिरनार की उस पाँचवीं मोक्ष टोंक पर पर्वत की एक शिला पर प्रभु के चरणचिह्न तथा उन नेमिप्रभु के जिनबिम्ब उत्कीर्ण हैं....जो आज ८६,००० वर्ष बाद भी हमें तीर्थंकर प्रभु का स्मरण कराके परमपद प्राप्ति की भावना जागृत करते हैं।

गिरनार की टूँक पर, नेमिनाथ निर्वाण।
यात्रा करते हृदय में, जागे आतमध्यान ॥

अहो ! बहत्तर करोड़ और सात सौ मुनिवरों की – ऐसी सिद्धभूमि गिरनार तीर्थ को हमारा बार-बार वन्दन हो !

पहले जो चिन्तागति विद्याधर थे और विवाह के लिये प्रीतिमती राजकुमारी की माँग को जिन्होंने अस्वीकार किया था; पश्चात् चौथे स्वर्ग के देव होकर अपराजित राजा हुए थे, तत्पश्चात् सोलहवें स्वर्ग के इन्द्र होकर सुप्रतिष्ठ राजा हुए, पश्चात् अहमिन्द्र हुए और अन्त में भरतक्षेत्र के बाईसवें तीर्थंकर होकर गिरनार की पाँचवीं टोंक से मोक्ष पधारे; वे भगवान नेमिनाथ हमें भी शीघ्र मोक्षपद की प्राप्ति करायें।

यद्यपि इन्द्रादि देव भी जिसकी पूजा करें ऐसी अद्भुत पुण्यलक्ष्मी

भगवान नेमिनाथ के पास थी, अत्यन्त सौन्दर्य से सुशोभित उनकी कुमारावस्था थी और राजुल (राजमती) जैसी अत्यन्त रूपवती राजकन्या उन्हें वरमाला पहिनाने को आतुर थी, तथापि अतीन्द्रिय चैतन्यवैभव के निकट भगवान ने उन सबको तुच्छ तृणवत् जानकर त्याग दिया और संयम धारण करके परमात्मा बन गये।

इसप्रकार जगत के मुमुक्षु जीवों को वैराग्य हेतु महान आदर्शरूप हुए। धर्मचक्र की धुरी (नेमि) बनकर जिन्होंने 'नेमिनाथ' नाम सार्थक किया – उन भगवान के द्वारा चलाये हुए धर्मचक्र से धर्मीजीव आज भी अपने अन्तर में मोक्ष की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

श्रीकृष्ण जैसे महापुरुष ने भी जिन परमात्मा की शरण लेकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया, वे भगवान श्री नेमिनाथ इस पृथ्वी पर किसके द्वारा वंद्य नहीं हैं ! धर्मरथ के सारथी – ऐसे प्रभु नेमिजिन को हमारा बारम्बार नमस्कार हो !

हरिवंश के हंस प्रभु, बने सिद्ध भगवान।
'हरि' नमे तुव चरण में, करे सदा गुणगान॥
प्रभु तुम्हरे प्रसाद से, तीर्थ बना गिरनार।
तीन कल्याणक तुम्हारे, रत्नत्रय दातार॥

– इसप्रकार सौराष्ट्र देश में जिनके पंचकल्याणक हुए – ऐसे बाल ब्रह्मचारी बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान का मंगल चरित्र के साथ यहाँ हरिवंश पुराण का संक्षिप्त वर्णन पूर्ण हुआ।

यह पुराण एवं तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान का मंगल चरित्र सर्वजीवों को उत्तम ज्ञान-वैराग्य का कारण हो ! – ऐसी मंगल भावना है।

श्री नेमि प्रभु की वंदना कर, भक्ति भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥

➤ हमारे प्रकाशन ➤

चौबीस तीर्थंकर पुराण	(हिन्दी)	75/-
चौबीस तीर्थंकर पुराण	(गुजराती)	50/-
शिवपुर के राही (मल्टीकलर)	(श्री कानजीस्वामी का जीवनदर्शन)	50/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-1	(लघु कहानियाँ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-2	(सगर चक्रवर्ती, वज्रवाहु, सुकौशल)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-3	(ब्रह्मगुलाल, अंगारक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-4	(श्री हनुमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-5	(श्री पद्म (राम) चरित्र)	25/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-6	(अकलंक-निकलंक नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-7	(अनुबद्ध केवली श्री जम्बूस्वामी)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-8	(8 अंग और 5 अणुव्रतों की कथा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-9	(शासन नायक श्री वर्द्धमान चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-10	(सुभौम चक्रवर्ती, अमरकुमार नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-11	(सती अनंगसरा,निमित्त-उपादान नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-12	(बालि मुनिराज,महारानी चेलना नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-13	(यशोधर मुनिराज, धन्यकुमार कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-14	(नाटक-राजा श्रीकंठ, पुण्यप्रकाश...)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-15	(बंधुश्री एवं लुब्धक सेठ)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-16	(सती मनोरमा एवं पं. टोडरमल नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-17	(प्रद्युम्नकुमार,जयकुमार,सूर्यमित्र कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-18	(सेठ सुदर्शन, दीवान अमरचंद नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-19	(षट् लेश्या, श्री जीवंधर चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-20	(श्री वरांग चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-21	(श्री गुरुदत्त चरित्र,सम्यक्त्वलीला नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-22	(श्री सुकमाल चरित्र, मृगध्वज कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-23	(श्रीकृष्ण, चंदनवाला कथा)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-24	(उपसर्गजयी संजयंतमुनि, राजा श्रेणिक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-25	(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-26	(बाईस परीषह : संवाद के रूप में)	30/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-27	(तू किरण नहीं सूर्य है)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-28	(लघु कहानियाँ, एकांकी नाटक)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-29	(भरत से भगवान : एक जीवनयात्रा)	20/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-30	(भगवान पार्श्वनाथ चरित्र)	15/-
जैनधर्म की कहानियाँ भाग-31	(भगवान नेमिनाथ चरित्र)	20/-

हमारे प्रेरणा स्रोत : ब्र. हरिलाल अमृतलाल मेहता

जन्म
ई.सन् १९२४
पौष सुदी पूनम
जैतपुर (मोरबी)

देहविलय
८ दिसम्बर, १९८७
पौष वदी ३, सोनगढ़

सत्समागम
ई.सन् १९४३
अषाड़ सुदी दोज
राजकोट

ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा
ई.सन् २२.२.१९४७
फागण सुदी १
(उम्र २३ वर्ष)

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के अंतेवासी शिष्य, शूरवीर साधक, सिद्धहस्त, आध्यात्मिक, साहित्यकार **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन** की 19 वर्ष में ही उत्कृष्ट लेखन प्रतिभा को देखकर वे सोनगढ़ से निकलने वाले आध्यात्मिक मासिक **आत्मधर्म** (गुजराती व हिन्दी) के सम्पादक बना दिये गये, जिसे उन्होंने 32 वर्ष तक अविरत संभाला। पूज्य स्वामीजी स्वयं अनेक बार उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से इस प्रकार करते थे-

''मैं जो भाव कहता हूँ, उसे बराबर ग्रहण करके लिखते हैं, हिन्दुस्तान में दीपक लेकर ढूँढने जावें तो भी ऐसा लिखने वाला नहीं मिलेगा...।''

आपने अपने जीवन में करीब 150 पुस्तकों का लेखन/सम्पादन किया है। आपने बच्चों के लिए **जैन बालपोथी** के जो दो भाग लिखे हैं, वे लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। अपने समग्र जीवन की अनुपम कृति **चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों का महापुराण**–इसे आपने 80 पुराणों एवं 60 ग्रन्थों का आधार लेकर बनाया है। आपकी रचनाओं में प्रमुखतः आत्म-प्रसिद्धि, भगवती आराधना, आत्म वैभव, नय प्रज्ञापन, वीतराग-विज्ञान (छहढ़ाला प्रवचन, भाग 1 से 6), सम्यग्दर्शन (भाग 1 से 8), अध्यात्म-संदेश, भक्तामर स्तोत्र प्रवचन, अनुभव-प्रकाश प्रवचन, ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव, श्रावकधर्मप्रकाश, मुक्ति का मार्ग, मूल में भूल, अकलंक-निकलंक (नाटक), मंगल तीर्थयात्रा, भगवान ऋषभदेव, भगवान पार्श्वनाथ, भगवान हनुमान, दर्शनकथा, महासती अंजना आदि हैं।

2500वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर किये कार्यों के उपलक्ष्य में, जैन बालपोथी एवं आत्मधर्म सम्पादन इत्यादि कार्यों पर अनके बार आपको स्वर्ण-चन्द्रिकाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

जीवन के अन्तिम समय में आत्म-स्वरूप का घोलन करते हुए समाधि पूर्वक **''मैं ज्ञायक हूँ...मैं ज्ञायक हूँ''** की धुन बोलते हुए इस भव्यात्मा का देह विलय हुआ-यह उनकी अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता थी।